सुलभ साहित्य-माला

प्रथम पुष्प

शरत्-साहित्य

(प्रथम भाग)

सुमति, पथ-निर्देश, काशीनाथ,
अनुपमाका प्रेम

१

अनुवादकर्त्ता—
धन्यकुमार जैन

प्रकाशक
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर (प्राइवेट) लिमिटेड, बम्बई ४

प्राक्-कथन

[प्रथम संस्करण]

बंगालके स्वनामधन्य लेखक बाबू शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय हिन्दी पाठकोंके निकट अपरिचित नहीं हैं। इस समय वे भारतके सर्वश्रेष्ठ उपन्यास-लेखक गिने जाते हैं और पाश्चात्य देशोंके नामीसे नामी लेखकोंके साथ उनकी तुलना की जाती है। उनके अनेक उपन्यासोंके अनुवाद अंग्रेजी, फ्रेंच, इटालियन आदि विदेशी और गुजराती, मराठी आदि देशी भाषाओंमें हो चुके हैं। भारतीय लेखकोंमें उनका नाम जगत्प्रसिद्ध रवीन्द्र बाबूके बाद लिया जाता है, परन्तु लोकप्रियतामें वे उनसे भी बहुत आगे बढ़े हुए हैं। उनकी अनेक रचनाओंके पन्द्रह-पन्द्रह बीस-बीस संस्करण निकल चुके हैं और प्रायः प्रत्येक पुस्तकके सस्ते-मँहगे अलग-अलग अनेक संस्करण प्रकाशित होते हैं जो बहुत अधिक संख्यामें बिकते हैं। स्वयं रवीन्द्र बाबू भी उनके बड़े प्रशंसक हैं। अभी कोई चार-पाँच वर्ष पहले अपनी 'कालेर यात्रा' नामकी एक नाटिका उन्होंने शरत् बाबूको ही समर्पित की थी। लगभग चार वर्ष पहले बंगालमें शरत् बाबूकी ५७वीं वर्षगाँठ बड़ी धूमधामसे मनाई गई थी और उस समय बंगालके प्रायः सभी साहित्य-सेवियोंने उनके प्रति जो श्रद्धांजलियाँ[१] अर्पण की थीं, उनको पढ़नेसे मालूम होता है कि अबतक भारतके किसी भी लेखकको इतना सम्मान और इतना यश नहीं मिला है जितना शरत् बाबूको मिला।

हिन्दू-समाजके गार्हस्थ्य-जीवनके जो-जो चित्र उनकी कलमने अंकित किये हैं वे बड़े ही मर्मस्पर्शी, भावपूर्ण और सजीव हैं और हमारे सामाजिक विचारोंमें बिना किसी आन्दोलनके, चुपचाप एक बड़ी भारी क्रान्ति उत्पन्न कर रहे हैं तथा कट्टरसे कट्टर पुराण-पन्थियोंको अपने हृदय टटोलनेके लिए बाध्य कर रहे हैं। वे इस युगके महान् लेखक हैं। उनकी रचनाओंमें कुछ ऐसी विशेषतायें हैं

१. 'शरत्-वन्दना'के नामसे उक्त श्रद्धांजलियोंका संग्रह पुस्तकरूपमें प्रकाशित हो चुका है।

जो उनसे पहलेके लेखकोंमें नहीं थीं। एक प्रसिद्ध समालोचकने लिखा है "हमारे गार्हस्थ्य और समाज-जीवनमें स्नेह और प्रेम अपने स्वाभाविक आधारसे वंचित और विधि-निषेधोंके द्वारा अविन्यस्त होकर जिस गम्भीर वेदना, ग्लानि और लज्जाकी सृष्टि कर रहा है, शरत् बाबू उसी क्षुब्ध, व्यथित और व्यर्थ प्रेमकी वेदनाके पुरोहित हैं। उनकी मर्मस्पर्शिनी रचनाओंमें स्थान-स्थानसे गम्भीर वेदना घुमड़-घुमड़कर बाहर निकलती हुई जान पड़ती है। प्रभावशालिनी और जोश दिलानेवाली बात लिखनेमें वे अपना जोड़ नहीं रखते। सामाजिक और गार्हस्थ्य विधि-विधानोंके कारण यह क्षुब्ध और उत्क्षिप्त प्रेमकी विह्वलता हमारे घरों और समाजमें कैसी-कैसी करुण घटनाओंके द्वारा प्रकाशित होती है इसे शरत् बाबूने बहुत व्यापक रूपसे स्पष्ट किया है और यही उनकी विशेषता है।"

शरत् बाबूके अबतक उपन्यासों, कहानियों और नाटकोंकी संख्या पचासके लगभग पहुँच चुकी है और अब भी वे बराबर लिख रहे हैं। इनमेंसे हिन्दीमें जहाँतक हम जानते हैं उनकी छोटी-बड़ी कोई १५-१६ रचनायें ही प्रकाशित हुई हैं, शेष रचनाओंके आस्वादसे अभीतक हिन्दी-संसार वंचित है। हम चाहते हैं कि उनकी सब नहीं तो कमसे कम वे रचनायें जो बहुत प्रशंसित हैं, हिन्दीमें अवश्य आ जायें और उनका कमसे कम मूल्य रखकर प्रचार किया जाय। इसी इच्छाके वशवर्ती होकर आज हम 'शरत्-साहित्य'का यह पहला भाग ग्राहकोंको भेंट कर रहे हैं।

इस भागमें जो रचनायें प्रकाशित की गई हैं, उन सभीकी विशेषताओंपर विस्तृत प्रकाश डालनेकी हमारी इच्छा थी, परन्तु स्थानाभावसे वह नहीं हो सका। फिर भी इनके सम्बन्धमें थोड़ा-सा दिग्दर्शन करा देना आवश्यक प्रतीत होता है—

सुमति (रामेर सुमति) की गणना शरत् बाबूकी उत्कृष्ट रचनाओंमें की जाती है। इसमें वात्सल्य रसका खूब परिपाक हुआ है। ऐसी सर्वांगसुन्दर और मनोहर कहानी पाठकोंने शायद ही कभी पढ़ी हो। राम अपनी भाभीको इतना अधिक चाहता है कि उसीमें तन्मय हो रहा है। उसकी प्रकृतिकी सारी उच्छृंखलता उसीके स्नेहसे परिपुष्ट हुई है; किन्तु जब वह उस स्नेहसे वंचित होता है तब सिंह-शिशुके बदले भेड़का बच्चा बन जाता है। उसकी भाभीको कच्चे अमरूदकी

चोट लग जानेसे जो कष्ट पहुँचा है उससे वह अत्यन्त व्याकुल हो उठता है और स्वयं अपने मस्तकपर अमरूद मारकर यह जाननेकी चेष्टा करता है कि उस चोटने कितनी पीड़ा दी होगी ! वह अपने आपको न जाने कितने झूठे आश्वासन देनेका प्रयत्न करता है और बाहरसे अपनी शान बनाये रखनेके लिए न जाने कितनी निष्फल चेष्टायें करता है, परन्तु जब भाभी उसे बुलातीतक नहीं है, खानेतकको नहीं देती है, तब उसकी सारी बालक-प्रकृति भयसे सूख जाती है और सारी उच्छृंखलता चूर-चूर होकर धूलमें मिल जाती है। इतने अल्प स्थानमें इतना प्रबल करुण रस शायद ही किसी वर्तमान लेखककी प्रतिभाने दान किया हो।

पथ-निर्देश एक प्रेम-कहानी है। इसमें हेमनलिनी और उसकी माताका गुणेन्द्रके आश्रयमें आकर रहना, हेमका गुणेन्द्रको हृदयसे चाहने लगना, परन्तु गुणेन्द्र 'ब्राह्मसमाजी' होनेके कारण माता सुलोचना द्वारा, हेमकी इच्छाके विरुद्ध उसका अन्यत्र ब्याह दिया जाना, और दुर्भाग्यसे एक ही वर्षके भीतर उसका विधवा होकर घर लौट आना, इसपर माताकी आखें खुलना, उसका हृदयद्रावक पश्चात्ताप और मृत्युके समय यह इच्छा प्रकट करना कि गुणेन्द्र उससे पुनर्विवाह करके सुखी हो परन्तु लड़कीसे स्पष्ट न कह सकना, मृत्युके बाद गुणेन्द्रका भी साहस न होना कि माताका संकेत लड़कीपर प्रकट कर दे। इसके बाद दोनोंके उन्मुख प्रेम और लज्जा-संकोचके बीचका अन्तर्युद्ध और अन्तमें वास्तविक प्रेमको महामहिमान्वित करनेके लिए दोनोंका काशीवास करने चले जाना; इन सब बातोंने मिलकर इस कहानीमें एक महान् आदर्श खड़ा कर दिया है। इसका कथानक या प्लाट एक उपन्यासके योग्य था। छोटी कहानीके अपरिहार्य संक्षिप्त क्षेत्रमें विस्तृत वर्णन, सूक्ष्म विश्लेषण और घटना-बाहुल्यके लिए अधिक अवकाश नहीं रहता, इसलिए इसमें हेमनलिनीका चरित्र सम्पूर्ण रूपसे परिस्फुट नहीं हो सका है, उसकी सजीवता कुछ अविकसित-सी रह गई है; फिर भी इसमें हिन्दू समाजके विधि-निषेधोंके द्वारा विपर्यस्त और असमाप्त प्रेमकी गहरी वेदना पाठकोंके हृदयको मथ डालती है और स्पष्ट कर देती है कि नर और नारी यदि अपने जीवनके त्याग और दुःखके द्वारा परस्परके सम्बन्धको सार्थक कर सकें तो फिर उनपर किसी भी अनुल्लंघनीय विधि-निषेधका दावा नहीं चल सकता। जहाँ यह चीज हो वहाँ समाजके नियम-कानूनोंको तुच्छ मानना ही पड़ेगा।

काशीनाथमें शरत् बाबूकी प्रतिभाका परिपूर्ण विकास हुआ है। इसमें दिखलाया है कि पति और पत्नीका सम्बन्ध सहज नहीं है, इच्छा होनेपर भी ये एक-दूसरेके संसर्गसे सुखी नहीं हो सकते। काशीनाथ गरीबका लड़का है परन्तु निर्लोभ और उदास-प्रकृति; और उसकी स्त्री कमला धनीकी कन्या है, इसलिए अपने पतिके प्रति अनुरक्त होनेपर भी अभिमानिनी है। दोनों ही एक-दूसरेकी अवस्थाको नहीं समझ सकते, इसलिए एक-दूसरेको सुखी करना चाहते हैं, फिर भी अवस्थाकी विषमतासे सुखी नहीं हो सकते; अन्तमें एक सांघातिक घटना उन दोनोंको मिला देती है।

अनुपमाका प्रेममें आजकलकी लड़कियाँ उपन्यास-कहानियाँ पढ़-पढ़कर किसीको हृदय दे देने और उसके विरहमें व्याकुल होकर, उठते-बैठते प्राण दे देनेका जो स्वाँग रचा करती हैं, उसका बड़ा ही सुन्दर खाका खींचा गया है, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि यह प्रेम कितना हल्का और निःसत्त्व होता है तथा कठोर जीवन-संग्रामकी एक ही चोटसे किस प्रकार बिखरकर धूलमें मिल जाता है। आगे तिरस्कृत और लांछित ललितमोहनके प्रेमकी विशुद्धता, अनुपमाकी उसके प्रति सहानुभूति और स्वयं अनुपमाके जीवनकी विचित्रतापूर्ण कहानीने इस रचनाको बहुत ही मनोरंजक और सुन्दर बना दिया है।

अन्तमें अनुवाद-कार्यके सम्बन्धमें यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि मूलके भावोंको जहाँतक सम्भव हो सका है यथार्थ रूपमें पाठकोंके सम्मुख रखनेका प्रयत्न किया गया है। इसके लिए लेखक और प्रकाशक, दोनोंने ही पूरी-पूरी सावधानी रखी है और यथेष्ट परिश्रम किया है। इसमें सफलता कहाँतक मिली है, इसका निर्णय पाठक ही कर सकते हैं।

५-६-३६ **नाथूराम प्रेमी**

सुमति

१

रामलालकी उमर तो कम थी; पर दुष्ट-बुद्धि कम न थी। गाँवके लोग उससे डरते रहते थे। कब, किधरसे, किस रूपमें आफत टूट पड़ेगी, इस बातका अन्दाज लगाना मुश्किल था। उसके सौतेले बड़े भाई श्यामलालको भी ठीक शान्त प्रकृतिका आदमी नहीं कहा जा सकता: पर हाँ, इतना जरूर था कि वह छोटेसे कसूरपर भारी सजा न देता था। गाँवके जमींदारके यहाँ वह काम करता और अपनी जमीन-जायदादकी भी देख-भाल रखता। घरकी हालत मजेकी थी। कुआँ, बगीचा, खेत, दस-बीस घर बाग्दी[१] रिआया और कुछ नगद रुपया भी उसके पास था। श्यामलालकी स्त्री नरायनी जब पहले पहल इस घर में आई,—करीब तेरह-चौदह वर्षकी बात है,—तब उसी साल रामकी विधवा माँका देहान्त हुआ। मरते वक्त वे अपनी सारी गिरस्ती और ढाई सालके दूध-पीते बच्चे रामको अपनी तेरह सालकी बालिका पतोहू नरायनीके हाथ सौंप गईं।

इस साल चारों तरफ बुखारका बोल-बाला था। नरायनीको भी बुखार आ गया। तीन-चार गाँवोंके बीच नीलमणि बाबू ही एकमात्र डाक्टर थे, सो भी अधूरे,—उन्होंने पूरा इम्तिहान भी पास नहीं किया था और फिर इस समय उनकी फीस भी एक रुपयेसे बढ़कर दो रुपया हो गई थी। इसके साथ ही उनकी कुनैनकी पुड़िएँ भी अरारोट और मैदेकी मिलावटसे जायकेदार बन गई थीं! सात दिन बीत गये, पर नरायनीका बुखार जरा भी हल्का न पड़ा! श्यामलालको चिन्ता हो गई।

---

१. बंगालकी एक नीच जाति। ये मछली पकड़ते हैं, खेती करते हैं और लड़ने-मरनेमें प्रसिद्ध हैं।

घरकी नौकरानी नृत्यकाली, जो डाक्टर बुलाने गई थी, अपना-सा मुँह लिये लौट आई, बोली—डाँगदर साब आज आन गाँव जायँगे चार रुपयापर, सो नहीं आ सकते।

श्यामलालको गुस्सा आ गया, बोले—अरे तो कम्बख्तको हम भी चार दे देते, आता तो सही; रुपया बड़ा है कि जान? जा तू, बुला ला चांडालको।

नरायनीने कमरेके भीतरसे बात सुन ली। कमजोर काँपते हुए स्वरमें वह बोली—सुनो, यहाँ आओ, तुम इतने घबरा क्यों रहे हो? डाक्टर आज नहीं आते तो कल सही,—एक दिनमें क्या बिगड़ा जाता है?

रामलाल, जो आँगनके एक कोनेमें अमरूदके पेड़के नीचे बैठा चिड़ियोंके लिए पिंजरा बना रहा था, उठकर आया और बोला—तू रहने दे दइया, मैं जाता हूँ।

देवरकी आवाज सुनते ही नरायनी घबराकर उठ बैठी और बोली—सुनते हो, रामको रोको।—ओ राम, मेरे सिरकी कसम है, जाना मत,—भइया, तू कैसा है, किसीसे लड़ते नहीं हैं!

रामने सुना ही नहीं,—बाहर चला गया। उसका पाँच सालका भतीजा, जो अबतक सींकें हाथमें लिये जैसाका तैसा बैठा था, रामको बाहर जाते देख बोला—पिंजरा नहीं बनाओगे चाचा?

"बना लेंगे" कहकर राम चल दिया।

नरायनीने, करम ठोंककर, रोनेके स्वरमें पतिसे कहा—तुमने उसे जाने क्यों दिया? देखो, अब वह क्या उपद्रव करके आता है!

श्यामलाल गुस्सेमें तो थे ही, और भी झुँझलाकर बोले—मैं क्या करूँ? तुम्हारे रोकनेपर भी नहीं रुका। मेरे कहनेसे रुक जाता?

"हाथ क्यों नहीं पकड़ लिया? इस जलइयाके मारे तो घड़ी-भर भी चैन नहीं—मर जाऊँ तो अच्छा! नित्तो, जा तो बहनी,—खड़ी मत रह, भोलाको भेज, समझा-बुझाकर उसे मेरे पास लौटा लावे,—शायद वह अभी खलिहान-तक भी नहीं पहुँचा होगा।"

नृत्यकाली भोलाकी तलाशमें चल दी।

राम नीलमणि डाक्टरके घर जा पहुँचा। डाक्टर अपनी डिस्पेन्सरीमें बैठे

थे,—यानी एक टूटी अलमारीके सामने एक टूटी कुरसी-टेबुल लगाये काँटा हाथमें लिये दवा तौल रहे थे, और चार-पाँच रोगी मुँह बाये उसीको देख रहे थे। डाक्टर तिरछी निगाहसे रामको देखकर अपने काममें लग गये।

राम क्षण-भर चुपचाप खड़ा रहा, फिर बोला—भाभीका बुखार क्यों नहीं अच्छा होता?

डाक्टरने काँटेपर ही निगाह जमाये हुए कहा—नहीं होता, तो मैं क्या करूँ?—दवा तो देता हूँ—

"खाक देते हो! सड़ी मैदाके चूरेसे कहीं बुखार छूटता है?"

सुनते ही डाक्टरका चेहरा तमतमा उठा। काँटा, बाँट, दवा आदि सब चीजोंको एक तरफ हटाकर लाल-लाल आँखें निकाल करके वे रामकी तरफ एकटक देखते रह गये। इतनी बड़ी हिमाकतकी बात उनके सामने कोई जबानपर ला सकता है, उन्हें यह मालूम ही नहीं था।

क्षण-भरके बाद ही वे गरज उठे—सड़ी मैदाका चूरा! तो फिर लेने क्यों आता है रे? और तेरा भइया मुझे पैरों पड़कर बुलाने क्यों भेजता है रे?

रामने कहा—इस तरफ कहीं और कोई डाक्टर नहीं है इसलिए तुम्हें बुलाने भेजा है। अगर होता, तो नहीं भेजते।

कमरेमें बैठे हुए लोग दंग होकर सुन रहे थे; उनकी तरफ देखकर रामने फिर कहा—तुम नीच जात हो इसीसे कह बैठे 'पैरों पड़कर बुलाने भेजते हैं!' भइया किसीके पैरों नहीं पड़ते। आते वक्त भाभीने कसम दिला दी है, नहीं तो दाँत तो तुम्हारे सब अभी तोड़ देता! खैर, सुनो,—अच्छी दवा लेकर अभी तुरंत आओ, देर मत करो; आज अगर बुखार अच्छा नहीं हुआ, तो सामने जो कलमी आमके झाड़ लगा रखे हैं,—अभी तो ज्यादा बढ़े भी नहीं हैं,—राततक उनमेंसे एक भी न बचेगा। और कल आकर तुम्हारी ये शीशी-बोतलें सब चकनाचूर कर जाऊँगा!

इतना कहकर वह फौरन ही वहाँसे हवा हो गया।

डाक्टर हाथमें काँटा लिये बैठे ही रह गये।

एक बुड्ढेने कुछ हिम्मत बाँधकर कहा—डाक्टर साहब, अब आप और देर न करो। अच्छी दवाई अगर कहीं लुकी-छिपी रखी हो, तो उसे लेकर जल्दी

पहुँचो। उसका नाम है राम—जो कह गया है, वही करके छोड़ेगा।

डाक्टरने काँटा रखते हुए कहा—मैं अभी थानेमें दरोगाके पास जाता हूँ, तुम सब गवाह हो!

जो बूढ़ा सलाह दे रहा था वह बोला—गवाह! गवाही कौन देगा भइया? कुनैन खानेसे मेरे तो कान भन-भन कर रहे हैं। राम बाबू क्या कह गये, सो तो कुछ सुनाई ही नहीं दिया। और दरोगा क्या करेगा भइया? वह देवता देखनेमें तो छोटा है, पर उसके साथी बाग्दी लड़कोंका झुंड तो छोटा नहीं है। अगर आग लगाकर घरमें बन्द कर जला डाले तो न थानेके लोग देखने आयँगे,—और न दरोगा साहब ही एक मुट्ठी घास देकर उपकार करेंगे। गवाही-अवाही हमसे नहीं होगी,—उससे सब ही डरते हैं। इससे अच्छा तो यही है कि वह जो करनेको कह गया है, सो कीजिए। जरा मेरी नाड़ी तो देखिए आप,—आज कुछ रोटी-ओटी खाऊँ?

डाक्टर भीतर ही भीतर जले जा रहे थे। बूढ़ेके नाड़ी देखनेके प्रस्तावने उन्हें भड़का दिया। डपटकर बोले—गवाही देनेमें मैया मरती है! चलो निकलो यहाँसे,—मैं किसीकी नाड़ी-आड़ी नहीं देखूँगा! कोई मरता भी होगा, तो भी दवा नहीं दूँगा। देखूँ, तुम लोगोंकी क्या गति होती है!

बूढ़ा लकड़ी उठाकर खड़ा हो गया। कहने लगा—दोष किसीका नहीं डाक्टर साहब, उनको आप पहचानते नहीं हैं। बड़े शैतान हैं वे लोग। हाँ तो, उन्हें भी खबर देने जाना पड़ेगा, नहीं तो समझ बैठेंगे कि थाने जानेकी सलाह हम लोगोंने ही दी होगी। बीघे-भर बैंगन लगाये हैं,—बड़े भी हो चुके हैं,—शायद आज रातको ही वे सब साफ कर दें। बाग्दियोंके लड़के तो रातको सोते भी नहीं हैं, बाबूजी, थानेमें आप, न हो तो, फिर कभी चले जाइएगा; पहले एक शीशी असली दवा ले जाकर उन्हें ठंडा कर आइए।

बूढ़ा चला गया; और लोग जो थे वे भी धीरे-धीरे खिसकने लगे। नीलमणि बाबूने एक गहरी उसाँस ली और मानव-जीवनका अन्तिम अनुभव,—संसारके सर्वोत्तम ज्ञानका सूत्र,—कहते हुए मकानके भीतर चले गये कि 'दुनियामें किसी सालेका भला नहीं करना चाहिए।'

नरायनी जंगलेमेंसे बाहरकी ओर देखती हुई फड़फड़ा रही थी। इतनेमें राम

लौट आया ।

"गोविन्दा, चल, पिंजरा बनायें ।"

नरायनीने बुलाया—ओ राम, जरा इधर आ ।

राम खपचीके छेदमें सावधानीसे सींक पिरोता हुआ बोला—अभी नहीं । काम कर रहा हूँ ।

नरायनीने धमकाते हुए कहा—चल जल्दी, कहती हूँ न ।

राम सब छोड़-छाड़कर तुरन्त ही उठ बैठा और धीरेसे भाभीके कमरेमें आकर तख्त-पोशके एक ओर पाँयते बैठ गया । नरायनीने पूछा—डाक्टर मिले थे घरपर ?

"हाँ ।"

"क्या कहा उनसे ?"

"आनेको कहा ।

नरायनीको विश्वास नहीं हुआ, बोली—सिर्फ आने को कहा, और कुछ नहीं कहा ?

राम चुप हो रहा ।

नरायनीने कहा—बता तो सही, क्या-क्या कहा है ?

"नहीं बताऊँगा ।"

नृत्यकालीने आकर कहा—डाँगदर साब आ रहे हैं ।

नरायनी मोटी चादर खींचकर करवट बदलकर लेट रही । राम भाग गया । थोड़ी देरमें डाक्टरको साथ लिये श्यामलाल आये । डाक्टरने अपना काम पूरा करके अन्तमें नरायनीसे कहा—बहू रानी, बुखारका अच्छा होना न होना क्या डाक्टरके हाथकी बात है ? तुम्हारे देवरने तो मुझे दो दिनका समय दिया है । इस बीच अच्छा हो गया तो ठीक है, नहीं तो वह हमारे मकानमें आग लगा देगा ।

मारे शरमके नरायनीका तो मरना हो गया । बोली—उसकी सब बातें ऐसी ही होती हैं, आप किसी तरहकी चिन्ता न करें ।

डाक्टरने कहा—लोग कहते हैं कि उसका एक गुट्ट है । उस गुट्टकी बात और काममें कोई फर्क नहीं पड़ता । इसीसे बड़ी आशंका हो रही है बहू , हम तो

दवा ही दे सकते हैं, प्राण तो नहीं दे सकते ?

नरायनी थोड़ी देर चुप रहकर बोली—यह तो हम जानते ही हैं कि वो छोरा किसी न किसी दिन जेल जायगा। पर साथमें कहीं हम लोगोंको भी न जाना पड़े, यही फिकर है।

आज नीलमणि बाबू अपने खास कमरेका सन्दूक खोलकर असली कुनैन और ताजी दवा लाये थे। उसे देकर, सब समझा-बुझाकर, वे चलने लगे तो श्यामलाल उन्हें चार रुपया नजर करने लगे। डाक्टरने दाँतों तले जीभ दबाकर कहा—आप यह क्या करते हैं ! मेरी फीस एक रुपया है, उससे ज्यादा हरगिज नहीं ले सकता, मेरी ऐसी आदत नहीं। श्यामबाबू, रुपया दो दिनकी चीज है मगर धर्म हमेशाका है।

दो दिन पहले यहींसे उन्होंने एककी जगह दो रुपये लिये थे, इस बातको भी आज वे भूल गये ! मगर श्यामलाल सब बातें समझ गये। खैर कुछ भी हो, नरायनी अच्छी हो गई और घरके काम-काज पहलेकी तरह ही चलने लगे।

२

करीब दो महीने बीत गये। एक दिन नरायनी, नदीसे नहाकर लौटते ही, पानीका घड़ा उतारती हुई बोली—नित्तो, वो बन्दर गया कहाँ ? 'बन्दर' कौन है, इसे घरके सभी लोग जानते थे। नृत्यकालीने कहा—छोटे बाबू अभी तो थे यहाँ—वो रहे, वहाँ बैठे पतंग बना रहे हैं।

नरायनीने रामको देखते ही बुलाया—इधर तो आ कलमुँहे, तू इधर आ ! तेरे मारे मैं क्या कुएँ-पोखरमें डूब मरूँ, क्या करूँ ?

रामलाल आधे बेलके गूदेको लकड़ीसे खुरचता हुआ नरायनीके सामने आकर खड़ा हो गया।

नरायनीने कहा—बिहारीके बगीचेकी खीरेकी बेल क्यों उखाड़ आया, बता ?

"मुझे उसने उखाड़ते देखा है ?"

"उसने नहीं देखा, मैंने तो देखा है। क्यों उखाड़ी बता ?"

"उस बुढ़िया राँड़ने मुझे गाली क्यों दी ?"

नरायनीने जल-भुनकर कहा—गालीकी बात पीछे सुनूँगी,—पहले यह बता

कि तू चोरी क्यों कर रहा था ?

रामलाल एक साथ अचम्भे और गुस्सेमें आकर बोला—चोरी कर रहा था ? हरगिज नहीं। जरा-सा खीरा ले लिया, तो क्या चोरी हो गई ?

नरायनी और भी भड़क उठी। बोली—हाँ बन्दर, होती है, होती है ! सौ बार होती है ! चोरी किसे कहते हैं, जरा-सा बच्चा भी जानता है ! धींगरा तो हो गया, पर तू अब भी यह नहीं जानता ! खड़ा रह एक पैरसे ! पाजी कहींका,—खड़ा हो, उठा पैर !

इस घरमें छोटा बच्चा गोविंदा था रामका वाहन। चौबीसों घंटे वह रामके पास रहता और सब काममें उसकी सहायता करता। रामके हुक्मके मुताबिक अबतक वह पतंग पकड़े बैठा था; गड़बड़ी देख, उसे छोड़ वह माँके पास आकर खड़ा हो गया।

रामको इधर-उधर करते देख चटसे 'चाचा, खड़े रहो एक पैरसे—ऐसे—' कहकर स्वयं उसने खड़े होकर एक पैरसे खड़े होनेकी तरकीब बता दी।

रामने तड़-से उसके गालपर एक तमाचा जड़ दिया और फिर पीछेकी ओर मुड़कर वह एक पैरसे खड़ा हो गया।

नरायनी किसी कदर हँसी रोककर बच्चेको गोदमें उठा रसोई-घरमें चली गई। दो मिनट बाद बाहर लौटकर उसने देखा, राम वैसे ही एक पैरसे खड़ा है और धोतीके छोरसे बार-बार आँखें पोंछ रहा है।

नरायनीने कहा—अच्छा जा, हो गया। अब ऐसी बदमाशी मत करना।

रामने बात नहीं मानी। गुस्सेमें उसी तरह एक पैरपर खड़े-खड़े आँखें पोंछता रहा।

नरायनी पास जाकर उसकी बाँह खींचने लगी; पर वह कड़ा होकर खड़ा ही रहा और जोरसे झटका देकर उसने उसका हाथ हटा दिया। नरायनीने हँसकर फिर एक बार हाथ खींचनेकी कोशिश की; अबकी बार वह पहलेहीकी तरह जोरके झटकेसे हाथ हटाकर भाग गया।

घंटे-भर बाद नृत्यकाली जब रामको बुलाने आई तो देखती है कि चंडी-मंडपके उस बाजूके बरंडेमें पैर लटकाये आप चुपचाप मुँह फुलाये बैठे हैं !

दासीने कहा—इस्कूलका बखत हो गया छोटे बाबू, बहूजी बुला रही हैं।

रामने कुछ जवाब नहीं दिया। इस तरह बैठा रहा, मानों उसने सुना ही नहीं।

नित्तोने सामने जाकर कहा—बहूजी नहा-धोकर खानेको कह रही हैं।

राम आँखें घुन्नाता हुआ गरजकर बोला—जा तू यहाँसे। दूर हो।

"मगर, बहूजीने क्या कहा, सुन लिया?"

"नहीं सुना, जा। मैं नहीं नहाऊँगा, नहीं खाऊँगा,—कुछ नहीं करूँगा,—तू जा यहाँसे।"

"अच्छा तो मैं जाकर कहे देती हूँ।" कहकर दासी जाने लगी।

राम उसी वक्त उठकर चटसे पिछवाड़ेके गंदे तालाबमें डुबकी लगा आया और भींगे सिर, भींगे कपड़े पहिने, उसी तरह फिर आकर बैठ गया। नरायनी खबर लगते ही घबराकर दौड़ी आई। "अरे ओ भूत! यह क्या किया तूने? उस तलैयामें तो मारे डरके कोई पैरतक नहीं डुबोता, और तू मजेसे डुबकी लगा आया!"

उन्होंने अपने आँचलसे अच्छी तरह उसकी देह पोंछी, सिर पोंछा, अपने हाथसे कपड़े बदले और फिर घरमें ले जाकर खाना परोसा। राम थालीके सामने मुँह फुलाये खूँटेकी तरह बैठा रहा।

नरायनी उसके मनकी बात समझ गई, पास आकर सिरपर हाथ फेरती हुई बोली—राजा भइया है न तू, इस बखत अपने आप खा ले; रातको मैं खिला दूँगी। अभी तो, देख, इतना आटा रखा है पोनेको। राजा भइया, खा ले!

तब राम चुपचाप खाकर और कपड़े पहिनकर स्कूल चल दिया।

दासीने कहा—तुम्हारी ही वजहसे इसकी सब आदतें बिगड़ती जाती हैं बहूजी! इतने बड़े लड़केको गोदमें बिटाकर खिलाया जाता है क्या! जरा-सा रूठ गया तो गोदमें बिटाकर हाथसे खिलाओ, यह तुम्हारी कहाँकी रीत है?

नरायनी कुछ मुस्कराकर बोली—नहीं तो खाता नहीं जो। रातको खिलानेका लोभ न दिखाती तो वहीं मुँह फुलाये बैठा रहता,—खाता थोड़े ही,—न स्कूल जाता।

दासीने कहा—खाता कैसे नहीं? भूख लगती तो आप ही खाता। इतना बड़ा हो गया—

नरायनी भीतर ही भीतर नाराज-सी होकर बोली—तुम लोग तो उसकी उमर ही देखा करती हो। अरे बड़ा होगा, होश सँभालेगा, तो उसे आप ही लाज आयगी। वह खुद ही तब न तो गोदमें बैठेगा और न मुझसे खिलानेको कहेगा।

दासी दुःखित होकर बोली—मैं तो अच्छेके लिए ही कह रही हूँ बहूजी, नहीं तो मुझे क्या पड़ी है? तेरह-चौदह सालका हो चला, अब भी अगर उसे अकल न आई, तो फिर कब आयगी?

नरायनीको अब गुस्सा आ गया। बोली—अकल आनेके लिए कोई उमर नहीं होती नित्तो, किसीको दो साल पहले आती है, किसीको दो साल बाद। और आवे चाहे न आवे, तुम लोगोंको इतनी फिकर क्यों है?

दासीने कहा—यही तो तुममें दोष है बहूजी! वह कितना शरारती हो गया है, सो क्या तुमसे कुछ छिपा है? मुहल्ला-भर यही कहता है कि तुम्हारे ही लाड़-प्यारने उसे मिट्टी—

नरायनीने रूखे स्वरसे कहा—मुहल्लेके लोग लाड़-प्यार ही देखते हैं; डाँटती-डपटती हूँ सो कोई नहीं देखता। पर तू तो मुहल्लेकी नहीं है,—सबेरेसे एक पैर-पर खड़ा-खड़ा रोता रहा, तलैयाके सड़े पानीमें नहा आया, भगवान् जानें, बीमार पड़ेगा या क्या होगा! उसके बाद तेरी क्या यह मनसा थी कि मैं उसे भूखा ही स्कूल भेज देती? घर और बाहरका रात-दिनका यह लांछन तो मुझसे नहीं सहा जाता, नित्तो!

कहते-कहते उसका स्वर रुँध-सा गया, आँखें डबडबा आईं, आँचलसे उसने आँखें पोंछ लीं। दासी नहीं जानती थी कि इसी बातपर कल रातको पतिसे भी मामूली कलह हो चुकी है। अत्यन्त लज्जित और दुःखित होकर उसने कहा—रोती क्यों हो बहूजी? मैंने कोई बुरी बात तो कही नहीं। लोग कहते हैं, इसीसे जरा सँभल जानेके लिए मैंने कहा था।

नरायनीने आँखें पोंछकर कहा, "भगवान् सब आदमियोंको एक-सा नहीं बनाते। वो जरा शरारती है, इसीलिए तो मुझे जिस-तिसकी बात चुपचाप सुननी पड़ती है, लेकिन जब-तब लाड़-प्यार करनेका उलाहना लोग क्यों देते हैं! लोग क्या यह चाहते हैं कि मैं उसे काटकर नदीमें बहा दूँ? तभी सबके कलेजे ठंडे

होंगे ?" इतना कहकर वह बिना किसी प्रकारके उत्तरकी प्रतीक्षा किये ही जल्दी-से उठकर चल दी।

दासीका मुँह जरा-सा हो गया। मन ही मन कहने लगी—भगवान् जानें क्या बात है! हर बातमें जिसकी इतनी बुद्धि, इतना धीरज है, वह इतनी-सी बात क्यों नहीं समझती? और वाह री डाँट-डपट! लड़का पल-भर एक पैरसे खड़ा रोता रहा, तो मानो दुनिया ही उलट गई!

रामको भाईके साथ बैठकर खाना बिलकुल पसन्द न था। आज रातको जान-बूझकर ही नरायनीने दोनों भाइयोंकी थाली पास लगाई और खुद बगलमें जा बैठी। राम रसोईमें घुसते ही उछल पड़ा। बोला—जाओ, मैं नहीं खाता,—मैं आज खाऊँगा ही नहीं।

नरायनीने कहा—तो जा, सो जा।

नरायनीके गम्भीर कंठ-स्वरमें रामकी उछल-कूद बन्द हो गई। मगर वह खाने नहीं बैठा,—चुपचाप खड़ा रहा!

रसोई-घरके दूसरे दरवाजेसे श्यामलालके आते ही राम आँधीकी तरह बाहर हो गया। श्यामलाल इतमीनानसे खाने बैठे, बोले—रामने नहीं खाया क्या!

नरायनीने संक्षेपमें उत्तर दिया—वो मेरे साथ खायगा।

खाना खाकर ज्यों ही श्यामलाल बाहर गये, त्यों ही राम मुट्ठीमें राख लिये हुए भीतर आया और बोला—मैं किसीको खाने नहीं दूँगा,—सबकी थालीमें राख डाल दूँगा,—डालूँ?

नरायनीने मुँह उठाकर कहा—डालके देख न, कैसी सजा मिलती है!

रामने मुट्ठीमें राख दबाये हुए ही स्वर बदलकर कहा—बड़ी सजा देनेवाली! सवेरे मुझे ठगकर रातका नाम लेकर खिला दिया, अब सजा बताती हैं!

"तूने खाया क्यों था?"

"तुमने जो कहा कि रातको—"

"धींगरा कहींका, पराये हाथसे खानेमें तुझे शरम नहीं आती?"

राम आश्चर्यमें आ गया, बोला—पराया हाथ,—किसका? तुम्हींने तो कहा था?

नरायनीने फिर बहस नहीं की, कहा—अच्छा जा, राख फेंककर हाथ धोके

आ । मगर फिर कभी किसी दिन खिलानेको कहेगा तो देखना !

खिलाना अबतक जारी था, इतनेमें दासी बिला-जरूरत एक बार दरवाजेके सामनेसे भीतरकी ओर देखती हुई उधरके बरंडेकी तरफ निकल गई !

नरायनीने ताड़ लिया, और रामसे कहा—राम, तुझे क्या कभी अकल न आयेगी ? भगवान् क्या कभी तुझे सुमति न देंगे ? लोगोंके ताने तो अब मुझसे सहे नहीं जाते ।

राम मुँहका कौर निगलकर बोला—कौन हैं वो लोग, उनका नाम बताओ ?

नरायनीने एक गहरी साँस लेकर कहा—बस कौन हैं—उनका नाम बताओ ?

परन्तु कुछ ही महीनों बाद नरायनीको सचमुच असह्य हो गया । उसकी विधवा माँ दिगम्बरी अपनी दस वर्षकी लड़की सुरधुनीके साथ अबतक किसी तरह अपने भइयाके घर दिन काट रही थी । सहसा उस भाईकी मृत्यु हो जानेके बाद उसके लिए कहीं खड़े रहनेको स्थान नहीं रह गया । नरायनीने पतिको राजी करके आदमी भेजकर उसे अपने यहाँ बुलाया । वह आई और आनेके साथ ही उसने अपनी लड़की नरायनीपर पूरा रोब गालिब कर लिया,—फिर लगे हाथ रामपर भी अधिकार जमानेके लिए पैर पसारना चाहा । शुरूसे ही वह रामको विद्वेषकी दृष्टिसे देखने लगी ।

आज सबेरे राम दो-तीन हाथ लम्बा एक पीपलका पौधा ले आया और उसने उसे आँगनके ठीक बीचों-बीच जमाना शुरू कर दिया । रसोई-घरके दरवाजेमें बैठी हुई दिगम्बरी माला फेरती-फेरती सब देखती हुई तीखी आवाजमें बोली—यह क्या हो रहा है राम ?

रामने उसकी ओर देखकर कहा—पीपल बड़ा हो जायगा, तो खूब छाँह रहेगी । मास्टर साहबने कहा है पीपलकी छाँह बहुत अच्छी होती है । गोविन्दा, जा तो, एक लोटा पानी ले आ । भोला मोटा-सा एक बाँस ले आ,—बेंड़ा लगाना होगा, नहीं तो, गइया-बछिया खा जायँगी !

दिगम्बरीके आग-सी लग गई, बोली—आँगनमें पीपरका पेड़ ! यह तो दुनियासे निराली बात है, घरमें पीपर लगाते यहीं देखा ।

रामने उसकी बात सुनी-अनसुनी कर दी ।

गोविन्दा अपने सामर्थ्यके अनुसार एक छोटी-सी लुटियामें पानी भर लाया। रामने उसके हाथसे लुटिया लेकर प्रेमसे हँसते हुए कहा—इतने-से पानीसे क्या होगा रे पगला!—तू यहाँ खड़ा रह, मैं पानी लाता हूँ।

इसके बाद घड़ों पानी उँड़ेलकर सारे आँगनमें कीचड़ करके जबतक रामने वृक्षारोपण-कर्म समाप्त किया, तबतक नदीसे नहाकर नरायनी भी लौट आई। अबतक दिगम्बरी भुसकी आगकी तरह अपने आपमें जल रही थी। कारण उसकी आँखोंके सामने ही यह हितकारी विराट् अनुष्ठान आरम्भ होकर लगभग समाप्त हो रहा था। अब तो लड़कीको देखते ही वह चिल्ला उठी—देख नरायनी, देख! अपने देवरकी करतूत अपनी आँखोंसे देख! आँगनके बीचमें पीपर गाड़कर कहता है, छाँह होगी! और वो देख पीछे, हरामजादे भोलाका काम, पूरेके पूरे बाँसके झाड़ घसीटे ला रहा है—बेंड़ा लगेगा!

नरायनीने पीछेको मुड़कर देखा, सचमुच वह ढेरके ढेर बाँस और कमचियाँ लिये आ रहा है। भोला और रामकी उमर लगभग बराबर ही है। नरायनी हँसने लगी। उधर माँका क्रोधपूर्ण घबराहटका व्यस्त भाव, और इधर रामका यह पागलपन,—साराका सारा दृश्य उसको परम हास्यकर प्रतीत हुआ। हँसकर बोली—आँगनमें पीपरके पेड़का क्या होगा रे?

राम आश्चर्यमें आकर बोला—क्या होगा क्या भाभी, कैसी उमदा ठंडी छाँह होगी और यह जो छोटी-सी डाली देख रही हो, बड़ी होनेपर,—एः गोविन्दा, उँगली मत दिखा, बढ़ेगा नहीं—बड़ी होनेपर, इसपर झूला डालेंगे और गोविन्दाको खूब झुलाया करेंगे। भोला, जरा गँड़ासा उठा लाना, बेंड़ा ऊँचा लगाना पड़ेगा, नहीं तो काली बछिया गर्दन डालकर खा जायगी।

इतना कहकर वह खटाखट फटाफट बाँस काटने लगा।

नरायनी हँसती हुई भरा हुआ कलसा रखने रसोईघरमें चली गई।

मारे गुस्सेके दिगम्बरीकी आँखें जलने लगीं। लड़कीकी तरफ क्रोधपूर्ण दृष्टिसे देखती हुई बोली—तूने कुछ भी नहीं कहा?—तो यहीं पीपर लगेगा क्यों?

नरायनीने हँसते हुए कहा—माँ, तुम घबराती क्यों हो, इतना बड़ा पेड़ कुछ लगेगा थोड़े ही। इसमें जड़-वड़ कहाँ है जो घड़ों पानी डालनेसे जम जायगा और बढ़ने लगेगा? यह तो कल ही सूख-साखकर अलग हो जायगा।

दिगम्बरी जरा भी शान्त न हुई, बोली—सूखेगा क्या खाक ? भला चाहती है तो इसे उखाड़के फेंक दे।

नरायनीने चौंककर कहा—बापरे ! तब तो घरमें रहना मुश्किल हो जायगा।

दिगम्बरीने कहा—क्यों, घर क्या उसका अकेलेका है कि मनमें आया तो आँगनमें पीपर लगा दिया ? तू क्या कोई होती ही नहीं ? मेरा गोविन्दा कोई नहीं है क्या ? हे भगवान् ! पीपरपर दुनिया भरके कौए, चील, गिद्ध आकर बसेरा करेंगे, हाड़-गोड़ डालकर आँगन बिगाड़ेंगे,—मुझसे तो, नरायनी, यहाँ नहीं रहा जायगा। आखिर उससे तू इतनी डरती क्यों है, मालूम भी तो हो ? मेरा घर होता, तो देखती वो कितना बड़ा शैतान है ! एक दिनमें सीधा कर देती !

नरायनीको माँके हृदयके भीतरका दृश्य मानो दर्पणकी तरह साफ दिखाई दे गया। वह कुछ देर चुप रहकर जोरसे हँस पड़ी, बोली—अभी तो लड़का है माँ, उसमें इतनी अकल कहाँ ! अकल होती तो क्या अपने घरके आँगनमें पीपर लगाता ? दो दिन रहने दो, फिर तो वह आप ही उखाड़कर फेंक देगा।

दिगम्बरीने कहा—फेंक देगा ! वो क्यों फेंकेगा, मैं खुद ही फेंक दूँगी।

नरायनीने कहा—नहीं माँ, नहीं, ऐसा काम मत करना, पहलेसे कहे देती हूँ, उसे तुम पहचानती नहीं। मेरे सिवा उसके भइया भी उसे छूनेकी हिम्मत नहीं करेंगे। माँ, आजके दिन तो लगा रहने दो, फिर देखा जायगा।

दिगम्बरी नाराज होकर बोली—अच्छा-अच्छा, तू जा, कपड़े पहिन !

दोपहरको नरायनी अपने कमरेमें बैठी तकियेका गिलाफ सी रही थी, इतनेमें दासीने आकर खबर दी—बहूजी, सत्यनाश हो गया ! नानीजीने छोटे बाबूका पेड़ उखाड़कर फेंक दिया। अब इस्कूलसे आते ही वे खा जायँगे, किसीको छोड़ेंगे थोड़े ही।

नरायनी तुरन्त सिलाई छोड़कर बाहर आ गई, देखा—सचमुच पेड़ नहीं है। माँसे पूछा—माँ, रामका पेड़ क्या हुआ ?

दिगम्बरीने हँड़िया-सा मुँह बनाकर उँगलीसे दिखाते हुए कहा—वो पड़ा है !

नरायनीने पास जाकर देखा, उसे सिर्फ उखाड़कर ही नहीं फेंका गया, बल्कि तोड-मरोडकर नष्ट कर डाला गया है। नरायनीने चुपचाप उठाकर उसी वक्त

उसे बाहर फिंकवा दिया, और धीरेसे वह अपने कमरेमें चली गई।

स्कूलसे लौटते ही रामने सबसे पहले अपना पेड़ देखा, देखते ही उछल पड़ा। किताब-कापी-सिलेट सब फेंक दी, चिल्ला उठा—भाभी, मेरा पेड़ ?

नरायनी रसोईमेंसे निकल आई, बोली—बताती हूँ, इधर आ।

"नहीं, नहीं आता, पहले बता ! कहाँ है मेरा पेड़ !"

"इधर मेरे पास आ तो सही, बताती हूँ।"

रामके पास पहुँचते ही वह हाथ पकड़कर उसे कमरेमें ले गई और गोदमें बिठाकर पीटपर हाथ फेरती हुई बोली—मंगलको कहीं पीपर लगाया जाता है रे पागल ?

रामने शान्त होकर पूछा—क्यों, क्या होता है ?

नरायनीने कहा—घरकी बड़ी बहू मर जाती है ! मंगलको नहीं लगाते !

रामका चेहरा क्षण-भरके लिए उतर गया। बोला—नहीं, तुम झूठ बोलती हो।

नरायनीने उसी तरह हँसते हुए कहा—भाभी कभी झूठ बोलती है ?—पत्रामें लिखा है सो झूठ है ?

"कहाँ है देखूँ पत्रा ?"

नरायनी मन ही मन घबराई, चटसे गम्भीर आश्चर्यका भाव दिखाती हुई बोली—तू है कैसा लड़का ! मंगलको पत्राका नाम भी कहीं लेते हैं,—तू देखेगा कैसे रे ? इतना तो भोला भी जानता है,—अच्छा, बुला तो उसे !

इतनी बड़ी मूर्खता भोलाके सामने प्रकट हो जायगी, इस भयसे अप्रतिभ हो उसने मातृसम बड़ी बहूके गलेमें दोनों बाँहें डालकर छातीमें मुँह दुबकाते हुए कहा—मालूम है, यह तो मुझे भी मालूम है। मगर फेंक देनेसे फिर तो कोई दोष नहीं रहता ना, भाभी ?

नरायनीने उसका सिर छातीसे चिपकाते हुए कहा "नहीं, अब कोई दोष नहीं है।" उसकी आँखें डबडबा आईं। मीठे स्वरमें कहा "क्यों रे राम, मैं मर जाऊँ, तो तू क्या करे ?"

रामने जोरसे सिर हिलाकर कहा—धत्, नहीं,—ऐसा नहीं कहते।

नरायनीने छिपाकर आँसू पोंछकर कहा—बूढ़ी हो गई, अब मरूँगी नहीं ?

अब रामकी समझमें आया कि हँसीमें कह रही है। हँसता हुआ बोला—तुम

बूढ़ी हो गईं। एक भी तो दाँत नहीं टूटा ! एक भी तो बाल नहीं पका !

नरायनीने कहा—बाल न पके तो क्या, मैं किसी दिन नदीमें डूब मरूँगी। नहाने जाऊँगी, सो लौटूँगी ही नहीं।

"क्यों भाभी ?"

"तेरे मारे ! मेरी माँको तू देख नहीं सकता, रात-दिन झगड़ा किया करता है,—उस दिन मालूम पड़ेगा, जब मैं लौटके न आऊँगी।"

इस बातपर रामने विश्वास तो नहीं किया, लेकिन उसके मनमें खटका बैठ गया ! बोला—अच्छा, अब मैं कुछ नहीं कहूँगा। मगर वो क्यों मुझे छेड़ती रहती हैं ?

"छेड़ने दे। वे मेरी माँ हैं, वे भी बड़ी-बूढ़ी हैं। जैसे तू मुझे प्यार करता है, उसी तरह उन्हें भी किया कर। करेगा न ?"

रामने फिर भाभीकी छातीमें मुँह छिपा लिया। यहीं मुँह रखकर उसने लम्बे तेरह वर्ष बिताये हैं,—इतना बड़ा हुआ है। फिर भला कैसे वह इतना बड़ा झूठ बोल सकता था ! यह तो उसके लिए बिलकुल ही असाध्य है।

नरायनीने रुँधे हुए कंठसे कहा—मुँह छिपानेसे क्या होगा, बता ?

ठीक इसी समय दिगम्बरी आ धमकी। कंठ-स्वरमें मिठास घोलकर बोली—तुझे काम-धन्धा भी नहीं है नरायनी ! यहाँ देवरको लेकर सुहाग हो रहा है और वहाँ तेरे लड़केकी दुर्दशा हो रही है !

रामने तुरन्त ही मुँह उठाकर देखा। उसकी आँखें भूखे शेरकी तरह चमक उठीं।

नरायनीने जबरदस्ती उसका सिर अपनी छातीकी तरफ खींच लिया और कहा—लड़केकी दुर्दशा हो रही है, कैसे ?

"कैसे ? अच्छी बात है !" कहकर दिगम्बरी चलती बनी।

बनाकर कहने-लायक कोई झूठी बात भी उससे कहते न बनी।

रामने जबरन सिर उठाकर कहा—उस डाइनका मैं टेंटुआ मसक दूँगा !

नरायनीने उसका मुँह दबाकर कहा—चुप रह पाजी, वे मेरी माँ हैं !

चार-पाँच दिन बाद एक दिन राम रोटी खाते-खाते जोरोंसे सिसकारी भरने लगा। वह दो-तीन बार पानी पीकर थाली फेंक-फाँककर उठ खड़ा हुआ,

और फिर लगा नाचने और बड़बड़ाने "इस डायनके हाथका भोजन मैं नहीं खाऊँगा, कभी नहीं खाऊँगा, मिरचोंके मारे सारा मुँह जल गया, भाभी,—ओ भाभी—"

नरायनी बैठी माला फेर रही थी, शोर सुनकर जल्दीसे उठ आई, बोली—क्या हुआ रे ?

मारे गुस्सेके राम रोने लगा। "मैं कभी नहीं खाऊँगा,—उसके हाथका कभी नहीं खाऊँगा,—उसको निकाल दो।" कहता हुआ वह तेजीसे बाहर निकल गया।

नरायनी दंग रहकर कुछ देरतक खड़ी रही, फिर माँसे बोली—माँ, बार-बार तुमसे कह दिया, तरकारीमें इतनी मिरचें मत डाला करो, इतनी मिरचें खानेकी यहाँ किसीको आदत नहीं है।

दिगम्बरी आग-बबूला हो उठी, बोली—ज्यादा मिरचें डाली भी हों!—दो मिरचें छौंकमें डाल भी दीं तो क्या हो गया! इतना हाय-तोबा मच गया!

नरायनीने झुँझलाकर कहा—न सही दो मिरचें, कुछ अटका है! जब कोई खाता ही नहीं,—

"चुप रह नरायनी, चुप रह! चली है मुझे रसोई सिखाने! बनाते-बनाते बाल सफेद हो गये, अब पेटकी लड़कीसे मुझे रसोई सीखना होगा! धिक्कार है मुझे!"

नरायनीने कुछ जवाब न देकर, सीधे रसोईघरमें जाकर, फिरसे सामान जुटाना शुरू किया।

दिगम्बरी दरवाजेपर पैर पसारकर माथा ठोंककर बैठ गई और लगी चिल्लाने—हाय भैया! कहाँ है तू, मुझे भी अपने पास बुला ले! अब तो नहीं सहा जाता! जिसके मुँहमें आता है, सो ही गाली दे देता है! मैं बुढ़िया हूँ, मैं डायन हूँ, मुझे निकाल दो! मैं दामाद-लड़कीके टुकड़े खाने आई हूँ,—मुझे फाँसी लगानेको रस्सी भी नहीं जुटती! इससे तो गली-गली भीख माँगकर पेट भरना लाख गुना अच्छा था! सुरो, चल बिटिया, निकल चलें। अब इस घरका अन्न-पानी छूना—

सुरधुनी रोनी-सी सूरत बनाकर माँके पास आकर खड़ी हो गई। दिगम्बरी

उसका हाथ पकड़कर चलनेको तैयार हो गई।

नरायनी तरकारी बना रही थी। हँसिया रखकर उठ आई और सामने रास्ता रोककर खड़ी हो गई।

दिगम्बरीने रोते हुए कहा—हमें रोक मत नरायनी, जाने दे अब। झाड़के नीचे भूखों मरना अच्छा, पर यहाँके टुकड़े खाकर जीना अच्छा नहीं।

नरायनीने हाथ जोड़कर कहा—किसपर गुस्सा करके जाती हो माँ! हमसे कोई कसूर हुआ हो तो बताओ?

दिगम्बरीके रोनेमें और भी उफान आ गया, नाकसे बोली—मैं नन्हीं-सी छोकरी नहीं हूँ नरायनी, सब समझती हूँ। बिना तेरी शह पाये उसकी क्या मजाल है जो इतना बढ़-चढ़के बोले? मैं डाइन हूँ! एं,—मुझे निकाल दो! अच्छी बात है, मैं खुद ही जाती हूँ। हम तुम लोगोंकी गलेकी फाँसी हैं, कहती हूँ सामनेसे हट, जाने दे!

नरायनीने माँके दोनों पैर छूकर कहा, "माँ, आजके दिन माफ करो।—अच्छा, उन्हें आ जाने दो, फिर जैसी समझमें आवे, करना।" इतना कह हाथ पकड़कर वह उन्हें भीतर ले गई। दोनों पैरोंपर पानी डाला, आँचलसे उन्हें पोंछा, एक पीढ़ेपर बिठाकर, पंखा लेकर हवा करने लगी।

उस समय तो उसका क्रोध शान्त हो गया, पर दोपहरको श्यामलालके जीमने बैठते ही किवाड़की आड़में बैठकर वह उफन-उफनकर रोने लगी। पहले तो श्यामलाल देखते ही रह गये। कुछ समझ ही न सके कि माजरा क्या है, फिर धीरे-धीरे सारा हाल उनकी समझमें आ गया और वे भर पेट खाये बिना ही उठ बैठे।

नरायनी समझ गई कि यह गुस्सा किसपर है। दासीसे सहा नहीं गया। घरमें वह जरा साफ कहनेवाली थी, चटसे कह बैठी—नानीजीने जान-बूझकर बाबूजीको खाने न दिया। आँखोंका पानी सूखा थोड़े ही जाता था नानीजी, दो मिनट बाद ही उसे बाहर निकालतीं!

दिगम्बरीके मुँहपर जैसे स्याही पुत गई, और वह बिना उत्तर दिये गुम्म होकर बैठी रही।

दोपहरीको राम न जाने कहाँ-कहाँसे घूम-फिरकर घर आया। इधर-उधर झाँक-झाँककर भाभीके कमरेमें जाकर देखा कि वे गोविन्दाको लिये सो रही हैं।

रंग-ढंग उसे अच्छे नहीं मालूम हुए। फिर भी धीरेसे बोला—भूख लगी है।

भाभीने कोई जवाब नहीं दिया।

उसने जरा और जोरसे कहा—क्या खाऊँ?

नरयानीने पड़े-पड़े ही जवाब दिया—मैं नहीं जानती, जा यहाँसे।

"नहीं, नहीं जाऊँगा, मुझे क्या भूख नहीं लगती?"

नरायनीने करवट बदलकर दुःखभरे स्वरमें कहा—मुझे परेशान मत कर,—नित्तो होगी, उससे माँग।

राम और कुछ न कहकर चुपचाप बाहर चला आया और दासीको खोजने लगा। मिलते ही बोला—खानेको दे!

दासी शायद तैयार ही थी; तुरन्त कटोरा-भर दूध, थोड़े शकरपारे और चिउड़ा ले आई।

रामको गुस्सा आ गया, बोला—यही है?

दासीने कहा—छोटे बाबू भला चाहते हो तो चुपचाप खा लो, ऊधम मत करो। बाबू बिना खाये कचहरी चले गये हैं, बहूजी उपास किये पड़ी हैं। शोर-गुल सुनकर अभी निकल आयेंगी तो तुम्हारी खैर नहीं, समझ लेना!

राम सब देख ही आया था; चुपचाप थोड़ा-सा दूध पीकर, चिउड़ा और शकरपारे जेबमें डालकर, तालाबके किनारे जाकर पेड़के नीचे बैठ गया। खानेमें उसकी रुचि नहीं रही थी। उसे ख्याल आता था कि भाभी उपास किये पड़ी है। वह अन्यमनस्क होकर चिउड़ा चबाता हुआ सोचने लगा, अगर उसे प्राचीन ऋषि-मुनियों जैसा कोई मन्त्र आता होता तो उससे वहीं बैठा हुआ वह भाभीका पेट भोजनसे भर देता। मगर मन्त्र तो मालूम नहीं, अब क्या उपाय करना चाहिए? कुछ तय न कर सका। घर लौटकर खानेके लिए अनुरोध करनेमें उसे शरम मालूम होने लगी। और फिर, वे खायँगी भी कैसे, भइयाने तो खाया ही नहीं! अनुरोध करनेसे भी क्या होगा! उसने जेबके शकरपारे और चिउड़ा धीरे-धीरे तालाबमें फेंक दिये और वहीं चक्कर काटने लगा। बार-बार उसके मनमें केवल यही खयाल आने लगा—भाभी उपासी पड़ी है। इस बातको वह मन ही मन जितने ही तरहसे कहने लगा, उतनी ही बार उसके मनमें सुइयाँ-सी चुभने लगीं।

रातको श्यामलालने स्त्रीसे कहा—अब तो मुझसे नहीं सहा जाता। उसके साथ रहना अब बहुत ही मुश्किल है।

नरायनी दंग रह गई, पूछा—किसकी बात कर रहे हो?

"रामकी। तुम्हारी माँ चार-पाँच रोजसे बराबर कह रही हैं, राम उनका नाहक अपमान करता है। मैं तो पाँच पंचोंको बुलाकर उनके सामने सब बँटवारा करके उसे न्यारा कर दूँगा। अब मुझसे नहीं सहा जाता।"

नरायनी सन्नाटेमें आ गई, कुछ देर चुप रहकर बोली—रामको न्यारा कर दोगे, यह बात जबानपर भी न लाना। वो दूध-पीता बच्चा है, जमीन-जायदाद, रुपये-पैसे लेकर क्या करेगा?

श्यामलालने व्यंग्य करते हुए कहा—दूध-पीता बच्चा तो है ही! जमीन जायदादका क्या वह करेगा, इसको वही जाने।

नरायनीने कहा—वो कुछ नहीं जानता, मैं सब जानती हूँ। अब समझी, माँ तुम्हें चार-पाँच रोजसे यही कहती फिरती हैं, क्यों?

श्यामलाल पहले तो अप्रतिभ हो बगलें झाँकने लगे, फिर बोले—नहीं तो, उन्होंने नहीं कहा। लोगोंके भी तो आँखें हैं। मुझे क्या तुमने निरा भोंदू ही समझ रखा है? मैं क्या कुछ देख ही नहीं सकता?

नरायनीने कहा—नहीं, मैं तो ऐसा नहीं समझती। मगर पूछती हूँ, उसके है कौन, किसे लेकर वह अलग होगा? न माँ है, न बहन है, न मौसी है,—कौन है? उसे बनाकर खिलायेगा कौन?

श्यामलाल झुँझलाकर बोले—मैं यह सब कुछ नहीं जानता।

मुँहसे कहा तो सही कि 'नहीं जानता,' मगर भीतर जानते सब थे। इतना बड़ा सत्य जाने बिना और रास्ता ही क्या था! नरायनी कुछ कहना चाहती थी, पर उसके ओठ काँप उठे। इसीसे, कुछ देर चुप रहकर, अपनेको सँभालती हुई, भारी गलेसे बोली "देखो, तेरह सालकी उमरमें, लड़कियाँ जब गुड़ियाँ खेला करती हैं तब, माँ मेरे सिरपर यह सब गिरस्ती छोड़कर स्वर्ग सिधारी थीं। वे देख रही होंगी कि उनके दिये हुए भारको मैं ढो सकी हूँ या नहीं। राँधकर खिलाया-पिलाया है, बच्चेको पाला है, कुटुम्ब-बिरादरीका ब्यौहार अकेले-सिर ढोते-ढोते मैं छब्बीस वर्षकी अध-बूढ़ी हो चुकी हूँ। अब अगर तुम मेरी घर-गिरस्तीमें दखल

दोगे तो, सच कहती हूँ, नदीमें डूब मरूँगी। तब दूसरा व्याह करना और रामको न्यारा करके जो जीमें आये सो करना। न मैं देखने आऊँगी, न कुछ कहूँगी-सुनूँगी। मगर मेरे सामने नहीं।"

श्यामलाल भीतर ही भीतर स्त्रीसे डरते थे; इसके बाद फिर वे आगे कुछ नहीं बोले। रातको बात यहींतक होकर रह गई। दूसरे दिन नरायनीने रामको पास बिठाकर अत्यन्त स्नेहसे उसकी पीठपर हाथ फेरते हुए कहा—राम, तू अब यहाँ मत रह, भइया। तू अलग कहीं जाकर रह—रह सकेगा?

राम उसी वक्त राजी हो भर-मुँह हँसकर बोला—हाँ, रह सकूँगा भाभी। तुम, मैं, गोविन्दा और भोला। अच्छा तो कब चलोगी भाभी?

नरायनीने कोई जवाब नहीं दिया। इसके बाद वह कहती भी क्या! पर राम कब माननेवाला था? वह उत्साहित हो उठा था; बोला—कब चलोगी भाभी?

नरायनीसे रहा नहीं गया, उत्तरमें उसे छातीसे लगाकर बोली—भाभीको छोड़कर तू और कहीं नहीं रह सकता?

रामने सिर हिलाकर कहा—नहीं।

"और भाभी अगर मर जाय तो?"

"धत्।"

"धत् नहीं! अभी तू भाभीकी बात नहीं सुनता—फिर देखना!"

रामने प्रतिवाद करते हुए कहा—कब तुम्हारी बात नहीं सुनी?

नरायनीने कहा—कब सुनी है बता? कबसे मैं कह रही हूँ, मेरी माँका तू अपमान न किया कर, तो भी तू उन्हें जो मनमें आता है कहता रहता है। कल भी तूने उनका अपमान किया है। अबकी बार मेरे जहाँ मनमें आयेगी, चली जाऊँगी।

"मैं भी संग चलूँगा।"

"तुझे मालूम ही नहीं होगा, कहाँ जाऊँगी। मैं छिपकर चली जाऊँगी।"

"और गोविन्दा?"

"वो तेरे पास रहेगा, तू ही उसे पालना-पोसना।"

"नहीं, मुझसे नहीं होगा भाभी।"

नरायनीको हँसी आ गई, बोली—होगा कैसे नहीं? तुझे ही उसे पालना-

पोसना पड़ेगा।

इससे रामको अविश्वास हो गया, हो-हो करके हँस पड़ा, बोला—सब झूठी बात है। तुम नहीं जाओगी।

"झूठ नहीं, सच कहती हूँ। देख मैं चली जाऊँगी।"

राम अनुतप्त हुआ; बोला—और जो तुम्हारी सब बातें मानूँ तो?

नरायनीने मुस्कराकर कहा—तो नहीं जाऊँगी। और तुझे गोविन्दाको भी नहीं पालना होगा।

राम बहुत खुश हुआ, बोला—अच्छी बात है, आजसे तुम देख लेना।

३

आठ-दस दिन बड़ी शान्तिसे कटे, कोई उपद्रव न हुआ। दिगम्बरीकी तरफसे कटाक्ष होते ही न हों, यह बात नहीं थी; पर राम गुस्सा न होता था। उस दिनकी भाभीकी बातपर उसे पूरा विश्वास तो नहीं हुआ, मगर फिर भी उसे डर हो गया था। परन्तु भगवान् विरूप थे, फिर एक दुर्घटना हो गई।

आज दिगम्बरीने अपने स्वर्गीय पिताकी वर्षी करनेके लिए बारह ब्राह्मण न्योतनेका संकल्प किया था। पिताकी प्रेतात्मा अबतक पुत्रके घरपर चुपचाप बैठी थी, अब नत-जमाईके घर उसका आवागमन होने लगा!—प्रत्यक्ष नहीं, स्वप्नमें। फिर उसे सन्तुष्ट तो करना ही चाहिए!

सबेरे राम स्लेटपर गणित कर रहा था। भोलाने आकर चुपके-चुपके खबर दी—भइयाजी, भगा बाग्दी तुम्हारे कार्तिक और गणेशको पकड़नेके लिए जाल लाया है, चलकर देखो तो सही।

यहाँ जरा समझाना पड़ेगा। बहुत दिनोंके पुराने बड़े-बड़े दो मच्छ घाटके किनारे हमेशा चक्कर लगाया करते थे। आदमियोंसे तो वे बिलकुल डरते ही न थे। राम कहा करता था, ये उसके 'पाले हुए' मच्छ हैं। उनके नाम रखे थे, 'कार्तिक' और 'गणेश'। मुहल्लेमें ऐसा कोई बाकी न था जिसने 'कार्तिक' और 'गणेश'के असाधारण रूप-गुणोंकी बातें रामसे न सुनी हों और वह उसके अनुरोधसे एक बार देख न आया हो। उनमें क्या विशेषता है, यह सिर्फ वही जानता था और कौन-सा कार्तिक है और कौन-सा गणेश, इसकी पहचान भी सिवा

उसके और कोई नहीं कर सकता था। औरकी तो बात क्या, इतने दिन साथ रहकर भोला भी कभी-कभी घपलेमें पड़ जाता और इस भारी गलतीके लिए रामसे कनैठी खाता।

नरायनी कभी-कभी हँसकर कहती—रामके कार्तिक-गणेश मेरी तेरह में काम आयगे।

भोलाकी खबरने रामको रंचमात्र भी विचलित नहीं किया। उसने स्लेटपर और भी झुककर कहा—जाल डालकर देखे न मजा जरा!—जाल तोड़कर वे निकल जायँगे।

भोलाने कहा—नहीं भइयाजी; हमारे यहाँका जाल नहीं है। भगा मल्लाहोंके यहाँसे मोटा जाल माँग लाया है,—उसे नहीं तोड़ सकेंगे।

रामने स्लेट रखकर कहा— चल तो देखूँ।

तालाब किनारे जाकर देखा, उसके कार्तिक-गणेशके विरुद्ध सचमुच ही षड्यन्त्र चल रहा है। भगा घाटके पास थोड़ा-सा चिउड़ा डालकर जाल लिये तैयार खड़ा है।

रामने आकर उसे जोरका एक धक्का दिया, बोला—बदमाश कहींका, चिउड़ा डालकर मेरे मच्छोंको बुला रहा है!

भगा रोनी सूरत बनाकर डरता हुआ बोला—बड़े बाबू हुक्म दे गये हैं। और कोई मछली मिली नहीं, भइयाजी।

रामने झटका देकर उसके हाथसे जाल छीनकर फेंक दिया और बोला—जा, भाग यहाँसे।

भगा जाल उटाकर धीरेसे चल दिया।

राम लौटकर फिर स्लेट-पेन्सिल लेकर बैठ गया। उसने प्रतिज्ञा की थी, किसीपर गुस्सा न करेगा।

दिगम्बरी आज जल्दी-जल्दी संध्या करके निवृत्त हो जाना चाहती थी। दासीने आकर खबर दी : मछली तो नहीं मिली नानीजी, छोटे बाबूने भगाको मारकर भगा दिया।

इन दोनों मच्छोंपर दिगम्बरीकी बहुत दिनोंसे लुब्ध दृष्टि थी। बड़े मच्छोंके बारेमें विधवाके मनोभावका अनुमान नहीं करना चाहिए। असलमें लोभ उसका

ठीक अपने लिए था यह कहना ठीक नहीं होगा; बल्कि अपने किसी काममें, अपने हाथसे राँधकर, सद्ब्राह्मणोंकी पत्तलमें परोसकर पुण्य और ख्याति प्राप्त करनेकी वासना उसके मनमें बहुत दिनोंसे पुष्ट हो रही थी। कल दामादकी राय लेकर, अर्थात् कार्तिक-गणेशका आभासतक न देकर, मल्लाहोंके यहाँसे मोटा मजबूत जाल मँगवाकर भगा बाग्दीको चार आना इनाम देनेका वादा करके, उसने सारी तैयारी करीब-करीब पूरी कर रखी थी। आज सबेरे भी उन दोनों प्राणियोंको घाटके किनारे केलि करते हुए देख आकर निश्चिन्त प्रसन्नचित्तसे वह माला फेर रही थी। इतनेमें यह दुःख संवाद पहुँचा; सुनते ही वह हिताहितज्ञान-शून्य होकर मारे क्रोधके आग-बबूला हो उठी। दाँत पीसनेकी उसे आदत पड़ गई थी। सहसा दाँत पीसते हुए माला ऊँचेको उठाकर कहने लगी—अरे कौन है मेरा दुश्मन! वह धींगरा न जाने कब मरेगा! तभी मेरी आत्मा ठण्डी होगी! बासी मुँहमें अभीतक पानी नहीं डाला, भगवान्! अगर मैं सच्ची होऊँ, तो तीसरे दिन!—

पास ही नरायनी बैठी तरकारी बना रही थी। बिजलीकी तरह तड़पकर उठ खड़ी हुई और चिल्ला उठी—माँ!

सुना है, सन्तानके मुँहसे मातृ-सम्बोधनकी संसारमें तुलना नहीं। नरायनीके मुँहसे निकले हुए मातृ-सम्बोधनकी भी आज शायद तुलना नहीं थी। उस एक अक्षरकी पुकारसे दिगम्बरीके हृदयका खून बर्फ हो गया। किन्तु नरायनी किसी तरह शान्त न रह सकी। देखते-देखते उसके दोनों गालोंपरसे टप-टप आँसू बरसने लगे। थोड़ी देर बाद आँखें पोंछकर जहाँ राम पढ़ रहा था वहाँ जाकर खड़ी हो गई।

कठोर स्वरमें रामसे पूछा—तूने भगा बाग्दीको मार-पीटकर भगाया है?

राम चौंक पड़ा; स्लेटपरसे सिर उठाकर क्षण-भर उसने उसके मुँहकी तरफ देखा और, जवाब देनेकी जरा भी कोशिश न करके, दूसरे दरवाजेसे सिरपर पैर रखकर भाग खड़ा हुआ।

नरायनीको भीतरकी बात कुछ नहीं मालूम पड़ी, वापस आकर भगाको बुला भेजा। वह आया और नरायनीने स्वयं उसे मछली पकड़ लानेका हुक्म दे दिया।

बहूजीका हुक्म पाकर भगा जाल लेकर चल दिया और थोड़ी ही देर बाद उसने एक बड़ा भारी मच्छ लाकर धमसे आँगनमें पटक दिया।

नरायनी रसोईके दरवाजेपर खड़ी थी, मच्छ देखते ही चौंक पड़ी। शंकित होकर बोली—क्यों रे, इसे अपने घाटपर तो नहीं पकड़ा? यह रामके कार्तिक-गणेशमेंका तो नहीं है?

भगाने इतना बड़ा मच्छ इतनी जल्दी लानेकी बहादुरीमें फूलकर कहा—जी हाँ बहूजी, यह घाटका ही मच्छ है,—बड़ा जबरदस्त मच्छ है।

फिर दिगम्बरीकी तरफ उँगली उठाकर बोला—उन माँजीने इसीको लानेके लिए कहा था।

नरायनीका जी-सा उड़ गया, वह सुन्न होकर खड़ी रही। दासी यद्यपि रामपर बहुत ज्यादा खुश न थी, फिर भी, मच्छ देखकर उसे गुस्सा आ गया, दिगम्बरीसे बोली—अच्छा नानीजी, छोटे बाबूके कार्तिक-गणेशकी बात मुहल्लेके लोगतक जानते हैं, फिर तुमने क्या सोचकर इस मच्छको पकड़नेका हुक्म दे दिया? और भी तो दो-तीन तालाब थे, क्या उनमें मच्छ नहीं थे? दस तो आदमी खायँगे, उनके लिए इस आधे मनके मच्छका क्या होगा? अभी तुरन्त कहीं छिपा दो इसे, नहीं तो छोटे बाबू आकर जौहर मचा देंगे।

दिगम्बरीने मुँह फुलाकर कहा—मुझे नहीं मालूम था इतना छलछन्द। एक मच्छ पकड़ लिया तो कौन-सा जुल्म हो गया जो कुनबाका कुनबा उछल रहा है।—इसे छिपा दो कहीं,—आई बड़ी छिपानेवाली! बाम्हन क्या खायँगे, तेरा सिर?

दासीने कहा—तुम्हारे बाम्हन खायँगे दो-ढाई बजे, बहुत समय है। तब-तक एक छोड़ दस मछलियाँ आ जायँगी। छोटे बाबूको पहले स्कूल चले जाने दो, नहीं तो जीना दूभर हो जायगा। भोला अभी तो यहीं खड़ा था, गया कहाँ वो। चला गया, मालूम होता है, खबर देने। अब खैर नहीं,—बहूजी, जो कुछ करना हो जल्दी कर डालो, अब और खड़ी मत रहो।

भगा चार आने पैसेके लोभसे जाल माँग लाया था, यहाँका रंग-ढंग देखकर वह नकद इनामकी आशा छोड़कर चुपकेसे चलता बना।

जरूरत पड़नेपर कब कहाँ राम मिल सकता है, भोला इस बातको जानता

था। वह दौड़ा-दौड़ा बगीचेके पिछवाड़ेमें उत्तरकी तरफ अमरूदके पेड़के नीचे पहुँच गया। राम एक डालीपर पैर लटकाये बैठा हुआ कच्चे अमरूद चबा रहा था। भोलाने हाँफते हुए आकर कहा—जल्दी देखने चलो भइयाजी, भगाने तुम्हारे कार्तिकको मार डाला।

रामने अमरूद कुतरना बन्द कर दिया, कहा—झूठ!

"सच्ची भइयाजी। माँजीने पकड़नेका हुकम दिया था, अभीतक आँगनमें पड़ा है; देखो न चलकर।"

राम धड़ामसे नीचे कूद पड़ा और आँधीकी तरह उड़ता हुआ आँगनमें पहुँचा। पहुँचते ही वहाँ ठिठककर खड़ा हो गया। मच्छको देखते ही यकायक बड़े जोरसे चिल्ला उठा—"यही तो मेरा गणेश है! भाभी, तुमने हुकुम देकर मेरे गणेशको पकड़वाया!" कहता हुआ जमीनपर औंधा पड़ गया और बलिपर चढ़े हुए सिर-कटे बकरेकी तरह पैर पटकने लगा। उसका यह शोक कितना सत्य है, कैसा दुर्दम्य है, इस विषयमें शायद दिगम्बरीको भी संशय न रहा!

उसे खिलानेके लिए रातको नरायनीने काफी मनाया-बहलाया, पर राम टससे मस न हुआ। बाँह पकड़कर उठाया तो उसने झटका देकर हाथ अलग कर दिया; और सारे दिन लंघन करनेके बाद रातको दो-एक गस्सा भात मुँहमें देकर उठ गया।

× × × ×

दिगम्बरी ओटमें खड़ी-खड़ी दामादसे कहने लगी—तुम एक बार कहो, नहीं तो नरायनी खायेगी नहीं, दिन-भरसे उपवास किये पड़ी है।

श्यामलालने पूछा—उपवास क्यों किया है?

दिगम्बरीसे रोया नहीं गया, इसलिए वह कंठको जरा करुण बनाकर बोली, मेरा ही कसूर हुआ है बाबा, माफ करो। मुझे क्या मालूम था कि तालाबसे बाम्हन-भोजनके लिए एक मछली पकड़वा मँगानेसे ऐसा महाभारत हो जायगा!

श्यामलाल ठीकसे समझ न सके, उन्होंने दासीको बुलाकर पूछा—क्या हुआ है नित्तो?

दासीने सामने न आकर जहाँ थी वहींसे कहा—वो छोटे बाबूका गणेश था।

श्यामलाल चौंक पड़े, पूछा—वो रामके कार्तिक-गणेशमेंसे एक था क्या?

दासीने जवाब दिया—हाँ।

अब ज्यादा कहनेकी जरूरत ही न थी। वे सब समझ गये, बोले रामने भी नहीं खाया होगा?

दासीने कहा—नहीं।

श्यामलालने कहा—तो फिर कहना ही फिजूल है। उसने नहीं खाया तो वह थोड़े ही खायगी!

दिगम्बरी कहने लगी—ऐसा काण्ड होगा जानती, तो मैं बाम्हन न्योतनेकी बात भूलकर भी जबानपर न लाती लल्ला! उसने खुद हुकुम देकर क्यों तो मछली पकड़वाई और अब क्यों ऐसा कर रही है, वही जाने! मैं तो चुपकी ही साध गई थी। तो भी सब दोष मेरा ही है। ऐसा ही है तो हम दोनोंको और कहीं भेज दो बेटा, यहाँ तो अब एक घड़ी भी टिकाव नहीं होगा।

थोड़ी देर चुप रहकर बिलकुल रोनेकी-सी आवाजमें फिर शुरू कर दिया—मेरी फूटी तकदीर अगर ऐसी न होती तो क्यों ऐसा भाई मरता और क्यों मुझे झाड़ू-लात खानेको यहाँ आना पड़ता! बेटा, हम बिलकुल ही मुँहताज हैं! इसीसे हाथ जोड़कर कहती हूँ, हमारे लिए तुम्हें गुजरका कोई ठौर-ठिकाना कर देना होगा।

श्यामलाल व्यस्त हो उठे, मगर 'हाँ ना,' कुछ कह नहीं सके।

नरायनी ओटमें खड़ी सब सुन रही थी और अपनी माँकी इस निर्लज्ज मायाचारीसे लज्जाके मारे मरी जा रही थी। वह सीधे रामके कमरेके सामने जाकर दरवाजा खटखटाकर बोली—राजा, कैसा है तू, भाभीकी बात नहीं सुनेगा? दरवाजा खोल दे!

राम जाग रहा था, पर उसने जवाब नहीं दिया।

नरायनीने फिर पुकारा—उठ तो सही, उठ-उठ किवाड़ खोल, भइया।

अबकी बार वह चिल्लाकर बोला—नहीं, नहीं खोलूँगा। नहीं, तुम जाओ, तुम सब मेरे दुश्मन हो।

"अच्छा सो ही सही, तू किवाड़ तो खोल।"

"नहीं, नहीं,—मैं नहीं खोलूँगा।"

सचमुच ही उसने उस रात किवाड़ नहीं खोले।

श्यामलाल अपने कमरेमेंसे सब सुन रहे थे। नरायनीके भीतर आते ही उन्होंने कहा—या तो कोई रास्ता निकालो, नहीं तो मैं सब छोड़कर जहाँ जीमें आयगा, चला जाऊँगा। इतना उपद्रव मुझसे बरदाश्त नहीं होता।

नरायनी कुछ जवाब न देकर सोचने लगी।

इसके बाद दो-तीन दिन और बीत जानेपर भी जब रामका गुस्सा कम न हुआ तो नरायनी भीतर ही भीतर क्षुब्ध और नाराज हो उठी। आज शाम हो जानेपर भी राम स्कूलसे घर न लौटा, तो वह उत्कंठित क्रोधसे अधीर हो गई। इतनेमें दिगम्बरी नदीसे नहाकर दुनिया-भरकी खबर-सुध लेती, रामकी अमंगल-कामना करती, अपनी बड़ी लड़कीकी दुनियासे न्यारी मति-गतिके अवश्यंभावी दुष्परिणामकी अड़ोस-पड़ोसमें घोषणा करती, शोक-तापादिसे असमयमें बाल सफेद होनेका कारण दरसाती, अपनेको उम्रमें बड़ी लड़की नरायनीके लगभगकी बताती और भाईकी घर-गिरस्तीमें अपने एकच्छत्र प्रभुत्वका विश्वासयोग्य इतिहास सुनाती हुई, इतमीनानसे घर लौट रही थी—पर बीचमें एक घटना सुनकर उड़ती हुई आ पहुँची। आँगनमें पैर रखते ही ऊँचे स्वरमें कहने लगी—अपने दुलारे गुणी देवरकी करतूत सुन ली नरायनी?

मारे डर और आशंकासे नरायनीका चेहरा फक पड़ गया। उसने पूछा—कौन-सी करतूत?

दिगम्बरीने कहा—वे तो थानेको गये हैं। और जायँ नहीं तो क्या करें? ऐसा बदजात लड़का तो मैंने सात जनममें नहीं देखा! अब जाय जेल!

उसके चेहरेसे खुशी मानो टपकी पड़ती थी। नरायनीने उसकी बातका कुछ जवाब न देकर दासीको बुलाकर कहा—राम अभीतक आया क्यों नहीं, भोलाको तो भेज जरा,—जाकर ढूँढ़ लावे।

दिगम्बरीने कहा—मैं तो सब जान-सुन आई हूँ।

नृत्यकाली सुननेकी इन्तजारीमें मुँह बाये खड़ी रह गई। नरायनीने घुड़ककर कहा—खड़ी है यहीं, जाती क्यों नहीं? कानसे सुन नहीं पड़ता क्या?

दासी सिटपिटाकर उसी वक्त चली गई। दिगम्बरीने अपने स्वरमें उद्वेग इकट्ठा करके कहा—क्या हुआ, सुना है तूने—

"पहले तुम कपड़े पहन लो माँ, पीछे न हो तो कहना," कहती हुई नरायनी

वहाँसे चल दी। दिगम्बरी दंग रह गई और मन ही मन बोली—ओहो, लड़कीका गुस्सा तो देखो! ऐसे दिलचस्प काण्डका धारावाहिक पूरा वर्णन न कर सकनेके कारण उसका पेट फूलने लगा।

रामकी करतूतका संक्षिप्त सार यह था,—गाँवके स्कूलमें जमींदारका भी एक लड़का पढ़ता है। आज टिफिनके वक्त उसके साथ रामकी बहस हो गई। विषय जरा जटिल था, इसलिए उसकी मीमांसा न हो सकी और मार-पीट हो गई। जमींदारके लड़केने कहा—शास्त्रमें लिखा है कि श्मशान-काली रक्षा-कालीकी अपेक्षा अधिक जाग्रत् हैं, क्योंकि उनकी जीभ बड़ी है!

रामने प्रतिवाद किया—हरगिज नहीं, श्मशान-कालीकी जीभ कुछ चौड़ी जरूर है। किन्तु बहुत बड़ी नहीं है और ऐसी लाल भी नहीं है। कुछ दिन पहले मुहल्लेमें सार्वजनिक रक्षा-कालीकी पूजा हुई थी, उसकी स्मृति रामके मनमें स्पष्ट विद्यमान थी। जमींदारके लड़केने रामकी बात न मानकर और अपनी हथेली बताकर कहा—रक्षा-कालीकी जीभ तो इतनी-सी है!

रामको गुस्सा आ गया, बोला—क्या इतनी-सी! कभी नहीं—वह इतनी बड़ी है। इतनी-सी जीभ होती, तो क्या कभी पृथ्वीकी रक्षा कर सकती? पृथ्वीकी रक्षा करती है, इसीलिए तो रक्षा-काली नाम है!

इसके बाद दो-चार बातें हुईं और फिर अन्तमें घुस्समघुस्सा! जमींदारका लड़का कमजोर था, लिहाजा उसीने ज्यादा मार खाई। उसकी नाकसे दो-एक बूँद खून भी गिरा? इस स्कूलके छोटेसे जीवनमें इतनी बड़ी दुर्घटना पहले कभी न हुई थी। जिस जमींदारका स्कूल है उसीके लड़केकी नाकसे खून! फिर क्या था, हेडमास्टर खुद स्कूल बन्द करके लड़कोंको लेकर दरबारमें जा पहुँचे। रामके बारेमें तो यह कहनेकी जरूरत ही नहीं कि वह पहले ही वहाँसे चम्पत हो गया था।

भोलाने आकर कहा—भइयाजी कहीं मिलते ही नहीं हैं।

थोड़ी देरमें श्यामलाल मुँह लटकाये घर आये। आँगनमेंसे ही बोले—सुनती हो? गाँवमें रहना तो अब दुस्वार हो गया। नौकरी करके दो पैसा कमा रहा था, वह भी अब गई समझो।

नरायनीने भंडार-घरसे निकलकर और चौखटके सहारे खड़े होकर सूखे हुए

कण्ठसे पूछा—थानेमें खबर कर दी क्या उन लोगोंने ?

श्यामलालने सिर हिलाते हुए कहा—बड़े बाबू देवता आदमी हैं। इसीसे माफ कर दिया; मगर और भी तो पाँच जनें हैं। आए दिन उसका तो एक न एक उपद्रव लगा ही रहता है, ऐसी हालतमें गाँवमें कैसे रहा जा सकता है, बताओ ? राम है कहाँ ?

नरायनीने कहा—अभीतक घर नहीं आया ? शायद डरके मारे भागा-भागा फिरता होगा।

श्यामलालने गम्भीर होकर कहा—भागे चाहे रहे, अब उससे हमारा कोई वास्ता नहीं। सौतेला भाई ठहरा। लोग नाम धरते, इसीसे इतने दिनोंतक निभाता रहा;—मगर अब अपनी जान भी तो बचानी है !

दिगम्बरीने रसोईके बरंडेमेंसे कहा—अपने लड़केका भी तो मुँह देखना है !

श्यामलाल उत्साह पाकर कहने लगे—देखना नहीं है तो ? जरूर देखना है ! इसलिए कल ही पाँच पंच बुलाकर धन-संपत्तिका बँटवारा कर देना है। और तुमसे भी कहे देता हूँ, इस मामलेमें अब उसे मारने-डाँटनेकी जरूरत नहीं। वह जो अच्छा समझेगा, करेगा। उसने कुछ समझकर ही तो मालिकके लड़केपर हाथ उठाया है।

दिगम्बरी मन ही मन खूब खुश हो रही थी, बोली—नरायनीको कौन जाने क्या पड़ी है, जो उसे मारती-पीटती है। मेरी तो उसे देखकर रूह काँप जाती है। बड़ा ही उद्दंड लड़का है, उसका क्या भरोसा ! जब मेरा ही अपमान करता है, तो नरायनीका अपमान कर बैठना उसके लिए कौन-सी बड़ी बात है। मैं तो यही कहूँगी बेटी, कि अपनी इज्जत अपने हाथ है। रामके झमेलेमें मत पड़।

श्यामलाल सासकी इस उपदेश-वाणीका समर्थन नहीं कर सके, शायद आँखोंके लिहाजसे। बोले—खैर कुछ भी हो, उसे दंड देनेकी जरूरत ही नहीं है।

नरायनी पत्थरकी मूर्तिकी तरह निर्वाक् निश्चल होकर सब सुनती रही, किसी भी बातका जवाब नहीं दिया। उसके बाद धीरेसे अपने कामपर चली गई।

करीब घंटे-भर बाद दासीने आकर चुपकेसे कहा—बहूजी, छोटे बाबू आये हैं।

नरायनी धीरेसे उठकर रामके कमरेमें घुस गई और भीतरसे हुड़का बन्द कर लिया। राम खाटपर चुपचाप बैठा हुआ न जाने क्या सोच रहा था, हुड़केकी

आवाज सुनकर चौंक पड़ा। मुँह उठाया तो देखा, भाभीने दरवाजा बन्द कर लिया है और कोनेमें उसीका लाया हुआ जो पतला-सा बेत पड़ा था, उसे उठा लिया है। वह चटसे उछलकर खाटके उस तरफ जाकर खड़ा हो गया। नरायनी-ने बुलाया—इधर आ।

राम हाथ जोड़कर मिन्नतके स्वरमें बोला—अब नहीं करूँगा भाभी, अबकी बार छोड़ दो।

नरायनीने कठोर होकर कहा—आ जायगा तो कम मारूँगी, नहीं तो मारते-मारते इस बेतको तेरी पीठपर ही तोड़ूँगी।

राम फिर भी टससे मस न हुआ, वहीं खड़ा-खड़ा हा-हा खाने लगा—तुम्हारे पाँव छूता हूँ, हाथ जोड़ता हूँ, भाभी, अब नहीं करूँगा, कभी नहीं करूँगा, कान पकड़ता हूँ भाभी—

नरायनीने खाटपर झुककर सड़-से एक बेत उसकी पीठपर जमा दिया और फिर सड़ासड़ बेतपर बेत पड़ने लगे। पहले तो उसने उधरके किवाड़ खोलकर भाग जानेकी कोशिश की, फिर आत्म-रक्षाके लिए सारे-कमरेमें भागता फिरा और अन्तमें पैरोंपर पड़कर चिल्लाने लगा। नृत्यकाली पीछे खड़ी जंगलेकी संधमेंसे देख रही थी। वह रो पड़ी, बोली—बहूजी, छोड़ दो बहूजी, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ—

दिगम्बरी मुँह बिगाड़कर खिसियानी-सी होकर बोली—तू इन बातोंमें दखल क्यों दिया करती है?

श्यामलालने कमरेके भीतरसे पुकारकर कहा—क्या हो रहा है यह? रात-भर पीटती ही रहोगी क्या?

नरायनीने बेत फेंक दिया और कहा—याद रखना!

४

राम रोटी खाने बैठा था। दिगम्बरीने किवाड़के पीछेसे सुर बाँधकर कहा—इतने बड़े लड़केको कहीं इस तरह मारा जाता है? उसके बड़े भइया तो उसपर हाथतक नहीं उठाते।

नृत्यकालीने काम करते-करते कहा—तुम भी कम नहीं हो नानीजी, तुम्हीं तो सब बातें बहूजीसे लगाया करती हो। रामको इतना अधिक मारना, उसे कतई

पसन्द नहीं आया था। रामने सुनकर आँखें तरेरकर कहा—डाइन बुढ़िया हम सबको खाने आई है।

दिगम्बरी चिल्ला उठी—सुन नरायनी, सुन तू अपने देवरकी बात!

नरायनी नहाने जा रही थी, लौट आई। परेशान-सी होकर बोली—मुझमें अब और बात सुननेकी शक्ति नहीं है माँ,—सच कहती हूँ नित्तो, मर जाऊँ तो मुझे शान्ति मिले—अब सहा नहीं जाता।—अरे ओ रे बन्दर, अभी तो तेरे पीठके दाग भी नहीं मिटे, इतनी जल्दी सब भूल गया?

रामने जवाब नहीं दिया, रोटी खाता रहा। नरायनीने और कुछ न कहा, नहाने चली गई। आँगनके कोनेमें एक अमरूदका पेड़ था, रोटी खाकर राम उसपर चढ़ गया और बड़ी लापरवाहीके साथ कच्चे-पक्के अमरूद कुतर-कुतरकर खाने लगा। किसीका कुछ हिस्सा खाया, किसीको थोड़ा-सा कुतरकर फेंक दिया और जो बिलकुल ही कचे थे, उन्हें भी निरर्थक तोड़-तोड़कर इधर-उधर फेंकने लगा। यह सब देख-भालकर दिगम्बरी भीतर ही भीतर जलभुनकर खाक हुई जा रही थी। नरायनी घरमें थी नहीं। उससे उठा नहीं गया तो बोली—तुम्हारे मारे तो बेटा, पके अमरूदोंका मुँहमें जाना ही दूभर हो गया है। कचे अमरूद तोड़-तोड़कर क्या कर रहे हो यह?

राम किसी भी हालतमें उसकी बात नहीं सह सकता था। खासकर अभी जब कि नृत्यकालीके मुँहसे वह सुन चुका था कि उसके मार खानेमें मूल कारण यही बुढ़िया है। मारे क्रोधके वह आपेसे बाहर हो रहा था। पेड़परसे चिल्लाकर बोला—अच्छा करता हूँ, खूब करूँगा बुढ़िया!

यह विशेषण दिगम्बरीको बिलकुल ही पसन्द न था, मुँह बिचकाकर बोली—बुढ़िया! खूब करेगा! अच्छा, आने दे उसे। जैसा कुत्ता है वैसा ही डण्डा चाहिए! कैसा बेहया लड़का है मैया!—मारते-मारते पीठकी चमड़ी उधेड़ दी गई, फिर भी जरा हया-शरम नहीं!

राम ऊपरसे ही बोला—डाइन बुढ़िया!

"छोटे मुँह बड़ी बात! पाजी हरामजादा कहींका, कहती हूँ कि उतर अभी!"

रामने जवाब दिया—क्यों उतरूँ? तेरे बापका पेड़ है क्या?

दिगम्बरी पागल हो उठी, खूब जोरसे चिल्लाकर बोली—एं! बापतक जाता

है ! सुन लिया नित्तो, सुन लिया ?

ठीक इसी समय नरायनी नहाकर लौट आई। पेड़पर निगाह पड़ते ही बोली—खाकर तू स्कूल नहीं गया रे ? पेड़पर ही बैठा है ?

रामने सोच रखा था कि पेड़परसे दूरसे ही वह भाभीको आते देख लेगा और उतरकर भाग जायगा। मगर इस झगड़ेमें पड़ जानेसे उधरका उसे ध्यान ही नहीं रहा। भाभी तो आँगनमें आकर खड़ी हैं, अब ? उसने डरते हुए कहा—अमरूद खा रहा हूँ।

"खा तो रहा है, पर स्कूल क्यों नहीं गया, सो बता ?"

"पेटमें दर्द हो रहा है जो।"

नरायनीके आग-सी लग गई, बोली—इससे रोटी न खाकर कच्चे अमरूद खा रहा है, क्यों ?

दिगम्बरी लड़कीकी आवाज सुनकर दौड़ी आई और कहने लगी—हरामजादेको देख तो सही, मेरे बापतक जाता है। कहता है कि क्यों उतरूँ, तेरे बापका पेड़ है !

नरायनीने आँख उठाकर पूछा—क्यों रे कहा तूने ?

रामने मुँह सिकोड़कर कहा—नहीं भाभी, नहीं कहा।

दिगम्बरी चिल्ला उठी—नहीं कहा हरामजादा, नहीं कहा ? अभी तो नित्तो मौजूद है। उसके बाद मुँह बिगाड़कर सानुनासिक स्वर बनाकर कहने लगी—उस दिन जब बेतपर बेत पड़ रहे थे, तब कहता था,—'अब नहीं करूँगा भाभी, तुम्हारे पाँव छूता हूँ, हाथ जोड़ता हूँ,—मर गया, अब नहीं करूँगा भाभी'। पकड़े जानेपर चींचीं करता है और छोड़ देनेपर उछलता है हरामजादा !

रामसे सहा नहीं गया। उसके हाथमें एक बड़ा-सा कच्चा अमरूद था,—खींचकर दिया जोरसे। पर दिगम्बरीको उसने छुआतक नहीं, नरायनीकी दाहिनी भौंहपर जाकर लगा पूरी ताकतसे। बेचारीकी आँखोंके आगे क्षण-भरके लिए अँधेरा छा गया, और वह वहीं बैठ गई। दिगम्बरी बुरी तरह शोर मचा उठी, दासी हाथका काम छोड़कर दौड़ आई, राम पेड़से कूदकर बेतहाशा भाग खड़ा हुआ !

दोपहरको जब श्यामलाल नहाने-खाने घर आये, तो सब हाल सुना। नरायनी

निर्जीवकी तरह बिछौनेपर पड़ी है, उसकी दाहिनी आँख फूलकर ढँक गई है। उसपर भींगे कपड़ेकी पट्टी बाँधकर नृत्यकाली पंखेसे हवा कर रही है। दिगम्बरीने आज किवाडकी शरण नहीं ली, सामने ही आकर जोरसे रोते हुए कहा—रामने नरायनीको आज मार डाला!

श्यामलाल मारे आशंकाके चौंक पड़े। पास जाकर चोटकी परीक्षा करके कठोरताके साथ स्त्रीसे बोले,—आज मैं तुम्हें कसम देता हूँ कि अगर तुम उसे खानेको दो, अगर किसी दिन उससे बोलो—उसकी किसी भी बातमें पड़ो, उस दिन मेरा सिर खाओ।

नरायनी सिहर उठी और बोली—चुप रहो, चुप रहो, ऐसी बात मुंहसे मत निकालो।

श्यामलालने कहा—मेरी इतनी कड़ी कसम अगर न मानोगी तो भगवान् करें उसी दिन तुम्हें मेरा मरा मुँह देखना पड़े! यह कहकर वे स्वयं डाक्टर बुलाने चले गये।

राम तमाम दिन नदी-किनारे घूम-फिरकर, बैठकर, खड़े होकर,—सम्भव-असम्भव सब तरहकी कल्पना करके शामके बाद अँधेरेमें घर लौटा। देखा, आँगनके बीचमें खपच्चियोंका बेंड़ा लगाकर मकानको दो भागोंमें विभक्त कर दिया गया है। हिलाकर देखा,—खूब मजबूत है, तोड़ा नहीं जा सकता। रसोई-घरमें दिया जल रहा था,—चुपकेसे मुँह बढ़ाकर देखा, वहाँ भी वही बात है। कोई है नहीं, सिर्फ बरतनोंका ढेर जमीनपर पड़ा है। बात क्या है, साफ समझमें न आने-पर भी, सबेरेकी दुर्घटनाके साथ इसका सम्बन्ध है, यह अनुमान करके, उसकी छाती सूख गई। तब वह चुपचाप अपने कमरेमें जाकर मकानके दूसरे हिस्सेकी गति-विधि जाननेके लिए कान लगाकर आहट सुनने लगा। इससे पहले उसे जो बड़े जोरकी भूख लग रही थी, अब उसे भी वह भूल गया। करीब नौ बजे होंगे। घूमकर पिछवाड़ेकी तरफ जाकर उसने पीछेका दरवाजा खटखटाया, तो दासीने किवाड़ खोल दिये और खुद अलग जाकर खड़ी हो गई।

रामने पूछा—भाभी कहाँ है?

"कमरेमें सो रही हैं।"

रामने कमरेमें जाकर देखा, भाभी खाटपर सो रही हैं और नीचे चटाई

बिछाकर दिगम्बरी अपनी छोटी लड़कीके साथ बैठी है। गोविन्दा खेल रहा था; रामको देखते दौड़ा आया, चाचाका हाथ पकड़कर उसपर झूल गया और बोला—चाचा, तुम्हारा घर उधर है, इधर हम लोगोंका घर है। बाबूजीने कहा है, इधर आनेसे तुम्हारी टाँग तोड़ देंगे !

जैसे ही राम खाटपर जाकर पाँयतेके पास बैठा वैसे ही नरायनीने अपने पैर समेट लिये। राम चुपचाप बैठा रहा। दिगम्बरीने अपनी लल्लीको धक्का देकर कहा—कहती क्यों नहीं सुरो, तेरे जीजाजीने क्या कहा है इसके लिए ?

सुरधुनी रटे हुए सबककी तरह जल्दी-जल्दी कहने लगी—जीजाजीने कहा है, तुम इधर मत आना। कल सबेरे,—आगे और क्या अम्मा ?

दिगम्बरीने कहा—जमीन-जायदाद—

सुरधुनीने कहा—जमीन-जायदाद सबका बँटवारा हो जायगा।

दिगम्बरी बोल उठी—कसमकी बात क्यों नहीं कहती ?—धींगरी तो हो गई !

सुरधुनीने कहा—जीजाजीने कसम दे दी है जीजीको कि खानेको भी मत देना, बात भी मत करना,—जीजाजीने कहा है—

नरायनीने बिस्तरेपरसे ही झिड़क दिया—अच्छा-अच्छा, हो गया, तू चुप रह।

फिर दिगम्बरी कहने लगी—ठीक ही तो है भइया। तुम कभी किसीका खून कर डालो, कोई ठीक थोड़ा ही है,—वे कसम न दें तो क्या करें ! मैं तो भइया, उनको किसी भी बातमें दोष नहीं दे सकती, चाहे कोई कुछ कहे। इस घरमें तुम्हारा आना-जाना खाना-पीना अब नहीं हो सकता। इसे भी तो अपने पतिके सरकी कसम माननी पड़ेगी !

सुरधुनीने कहा--अम्माँ, भूख लगी है, खाने चलो न।

दिगम्बरीने जरा खीझकर कहा—ठहर जरा बेटा !

राम घरमें बैठा है, ऐसी अवस्थामें तो वह घरमें आग लग जानेपर भी नहीं उठ सकती। रामकी छातीके भीतरका दबा हुआ रोना भीतर सर पटकने लगा ! परन्तु दिगम्बरीके सबेरेके उस मुँह बनाकर बिरानेने उसकी छातीपर पत्थर रखकर रास्ता रोक दिया। वह रो नहीं सका, एक बार कह नहीं सका—'अब कभी नहीं करूँगा भाभी !' इस एक ही वाक्यने बहुत-सी आपद-बिपदोंमें उसकी रक्षा

की है,—मगर आज वह उसे भी मुँहसे कह न सका, इसीसे भीतर ही भीतर उसका दम घुटने लगा।

इतनेमें नरायनीने थके हुए स्वरमें कहा—सुरो, चले जानेके लिए कह दे उसे।

अब वह रोना रोककर कह उठा—'हाँ, चले जानेको कह दे उसे।' मुझे भूख थोड़े ही लगती है! तभीसे तो नहीं खाया है।

नरायनीने जरा उत्तेजित होकर कहा—एकदम मार क्यों नहीं डाला? तब दस-दस हाथोंसे खाता! मैं नहीं जानती,—दिखाय सो करे, जाय नृत्यकालीके पास।

"नहीं जाता उसके पास! किसीके पास नहीं जाता! मैं बिना खाये उपासा सो रहूँगा।" कहता हुआ राम धमधम पैर पटकता हुआ, घरको कँपाता हुआ, बाहर निकल गया और चुपचाप अपने घर जाकर खाटपर पड़ रहा। दासी थोड़ा-सा खाना ले आई और बोली—छोटे बाबू, उठो, खा लो।

राम उछलकर गरज उठा—जा यहाँसे जलमुँही,—चली जा यहाँसे।

नृत्यकाली खाना रखकर चली गई, रामने थाली-ग्लास उठाकर आँगनमें फेंक दिया।

सबेरे, श्यामलाल जब अपने कामसे चले गये तो राम अपने आँगनमें टहलता हुआ गरजने लगा—कसम-असम मैं नहीं मानता। ओह, बड़ी कसम दी है! कौन होते हैं वे जो कसम दिलाते हैं? वे क्या मेरे सगे भइया हैं? वे मेरे कोई नहीं हैं, उनकी बात मैं नहीं मानता। मैंने क्या भाभीको मारा था? बुढ़िया डाइनको मारा था और चूककर लग गया है भाभीको, फिर वे कसम देने क्यों आये?

इन सब बातोंका किसीने भी जवाब नहीं दिया। थोड़ी देर बाद वह स्वर बदलकर कहने लगा—अच्छी बात है! अच्छा ही तो है! मत बोलो, मत खानेको दो! मैं अपने आप खूब मजेसे खाना बनाऊँगा: भात, दाल, अच्छी-अच्छी तरकारी, मछली—अकेला खूब पेट भरके खाऊँगा। मेरा क्या बिगड़ेगा?

इस बातका भी किसीने जवाब नहीं दिया। तब वह रसोईमें जाकर खना-खन झनाझन थाली, गिलास, लोटा, चम्मच इधरसे उधर उठा-रखकर काम करने लगा। शोर-गुलके साथ भोलाको चावल-दाल धोने और तरकारी बनानेकी आज्ञा दी। नृत्यकाली सब-कुछ रसोईघरमें रख गई थी। भोलाको हुक्म दिया—तू मेरा नौकर है, उस तरफ मत जाना। उस घरका कोई अगर इधर आवे

तो उसकी टाँग तोड़ देना,—अच्छा ! समझा न भोला ! नृत्यकाली आवे तो जरा इधर !

नरायनी रसोईवाले बरण्डेमें बैठी सब सुन रही थी। दिगम्बरी कुतूहलके वश बीच-बीचमें छेदमेंसे उस तरफ झाँक लिया करती थी। थोड़ी देर बाद बड़ी लड़कीके पास आकर हँसी रोकती हुई फिस-फिस करती हुई कहने लगी "ओहो, बेटाकी जरा अकल तो देखो ! आप बढ़िया तरकारी बनाकर खायँगे ! पीतलकी पतीलीमें चावल गलेतक भर दिये हैं और जरा-सा पानी डाल दिया है—भात बन रहा है ! एक तो खानेवाला है, परन्तु चावल चढ़ा दिये हैं दसके लिए। भला यह तो पूछो कि वे गलेंगे कैसे ! जलकर खाक न हो जायँगे ! इस पतीलीमें क्या इतने चावल आ सकते हैं; यह तो उन्हें बरबाद करना है। और घमण्ड है कि हम बना खायँगे ! राँधती तो हम लोग भी हैं, किन्तु दिमाग हमारा कभी नहीं चढ़ा ! भात राँधूँगी तो इतना पानी रखूँगी कि फिर देखना ही नहीं पड़े,—आँख मूँदकर उतार लो, तैयार हो जायगा ! कोई आवे, बनावे मेरे मुकाबिलेमें ! देखूँ, लोग किसका अच्छा बताते हैं !"

नरायनीने मुँह फेर लिया।

नृत्यकाली पास ही बैठी थी, बोली—नानीजी एक ही बात कहती हैं। भला उसने कभी किसी दिन एक गिलास पानी भी अपने हाथसे लेकर पिया है जो आज वह रसोई बनाकर खायेगा ? वह बहुत दिनोंकी पुरानी दासी है, ये सब बातें उसे अच्छी नहीं लग रही थीं।

माँकी देखादेखी सुरधुनी भी बीच-बीचमें छेदमेंसे उधर देख रही थी। घण्टे-भर बाद दौड़ी आई और जीजीका हाथ खींचती हुई बोली—ओ जीजी, जीजी री, चलके जरा देखो ना—छोटे जीजा बिलकुल कच्चा भात रूखा खा रहे हैं। दाल-तरकारी कुछ नहीं, सिर्फ भात ! अच्छा जीजी, कच्चा भात खानेसे पेटमें दर्द नहीं होगा ?

नरायनीने झटका देकर उसका हाथ अलग कर दिया और बिछौनेपर जाकर पड़ रही। आज वह कितने दुःख, कितनी भूखकी ताड़नासे यह सब खाने बैठा है, यह बात नरायनीसे छिपी नहीं रही।

दोपहरको श्यामलालके खा चुकनेपर दिगम्बरी नरायनीको बुलाने लगी,—

आ बेटी, दो गस्सा खा ले न ! बुखार थोड़े ही है, चोटसे हरारत हो गई है,—सो इसमें तो खाया जा सकता है । मैं कहती हूँ न, खाना नुकसान नहीं करेगा ।

नरायनी नीचेसे ऊपरतक मोटी चद्दर ओढ़कर अच्छी तरह लेटकर बोली—मुझे परेशान मत करो माँ, तुम लोग खा-पीकर चौका उठा दो ।

दिगम्बरीने कहा—और कुछ मत खाना, आधी-वाधी रूखी रोटी और परवलका भुरता ही खा ले,—कहे तो—

नरायनीने कहा—नहीं, मुझे कुछ नहीं खाना ।

दिगम्बरीने आश्चर्यके साथ कहा—ऐसी कौन-सी बात है ! कलसे उपासी पड़ी हुई है, आज भी न खायगी तो शरीर कैसे चलेगा ?

नरायनीने कोई जवाब नहीं दिया । नृत्यकालीने आकर कहा—तुम झूठ-मूठ क्यों कह रही हो, नानीजी । सरपर खड़े-खड़े शामतक चिल्लानेसे भी वे न खायँगी । बुखार है, जरा अच्छी तरह सो लेने दो ।

दिगम्बरी उठकर चली गई, बड़बड़ाती गई—भगवान् जाने क्या बात है ! चोट-ओट लगनेसे थोड़ी हरारत होती ही है, उससे कोई खाना-पीना थोड़े ही छोड़ देता है ! हमसे तो यह नहीं होता !

शामको नरायनी फिर रसोईवाले बरंडेमें आ बैठी ! जितनी बार नृत्यकालीसे उसकी चार आँखें हुईं, उतनी ही बार कुछ कहनेके लिए उसके ओठ खुले और कुछ कहे बिना बन्द हो गये ।

रामने स्कूलसे लौटकर हाथ-मुँह धोया और जाकर दूकानसे चना-चिउड़ा आदि ले आया । खाते-खाते ऊँचे स्वरमें बोला—मेरा क्या बिगड़ा ? भात खाकर मजेसे अपने स्कूल गया, अब आकर मजेमें फिर खा रहा हूँ !

बेंड़ाके उस तरफ सभी होंगे, इतना तो उसको मालूम था, पर सबेरेकी तरह अब भी किसीने कुछ जवाब नहीं दिया । इससे वह और भी घबरा गया । चिल्लाकर बोला—इधर हमारी हद है ! किसी दिन नृत्यकाली या और कोई हमारी हदमें आया तो उसकी टाँग तोड़ दूँगा !

यह टाँग तोड़नेकी धमकी वह पहले भी दे चुका था,—जैसे पहले उसका कोई नतीजा नहीं निकला था इस बार भी वैसा ही हुआ । कोई डरा या नहीं, कुछ मालूम नहीं हुआ । शामके बाद दिया जलाकर वह रसोईघरमें पहुँचा और

फिर शोर-गुल करने लगा—हमारी लकड़ियाँ कहाँ हैं, मैं बनाऊँगा कैसे ? हमारा सिल-लोढ़ा कहाँ है, मसाला कैसे बाँटूँ ?

उस घरसे दासीने कहा—बहूजीने कहा है, कल बाजारसे सिल-लोढ़ा मँगा देंगी।

"नहीं, मैं खरीदा हुआ सिल-लोढ़ा नहीं चाहता।" कहकर वह रोता हुआ रसोईघरसे निकल गया।

कुछ देर बाद फिर लौट आया और कहने लगा—क्यों मेरे गणेश मच्छको पकड़वाया ? क्यों बुढ़ियाने मुझे बिरा-बिराकर चिढ़ाया ?—अच्छी तरह गाली दूँगा,—खूब दूँगा,—बुढ़िया मरकर दूसरे जन्ममें चुड़ैल होगी !

दिगम्बरीने आँखें निकालकर कहा—सुन ले नरायनी, सुन ले ! यह जबर्दस्ती लड़ना है कि और कुछ ?

नरायनी चुपचाप दूसरी ओर देख रही थी, उसी तरफ देखती रही।

५

सारे दिन सवेरेहीसे रामकी बात-चीतका ढंग बदल गया। पूरे दो दिन हो गये,—भाभीने बुलायातक नहीं, डाँटा-डपटा नहीं, मारा नहीं, खानेको नहीं दिया।—ऐसा तो उसने अपने होशमें कभी नहीं देखा ! अब वह वास्तवमें डर गया। पहले तो वह अपने रसोईवाले बरंडेमें बैठकर तरह-तरहकी उल्टी-सीधी कैफियत-सी देने लगा। बोला "बिल्लीको मारनेके लिए अमरूद फेंका था !" एक बार कहा "हाथसे छूटकर भाभीके सिरमें लग गया था।" एक बार कहा "मैं तो कच्चा अमरूद फेंक रहा था; किसीको मारा थोड़े ही था !" फिर कहने लगा, "किसीको मैंने गाली नहीं दी।" परन्तु कोई भी कैफियत काम नहीं आई। उधरसे किसीने भी जवाब नहीं दिया, प्रतिवाद नहीं किया, 'हाँ' 'ना' कुछ भी नहीं कहा। एक बार बड़ी मुश्किलसे, लज्जा-संकोच सब त्यागकर "अब कभी नहीं करूँगा" कह गया। मगर फिर भी जब कोई नतीजा नहीं निकला, तब चुपचाप रोने लगा। अब वह किस तरकीबसे, किस चीजसे, किस तरह भाभीको सन्तुष्ट करे ? भाभीने उसे न्यारा कर दिया है, अब वह खायगा कहाँ ? किसके पास कैसे रहेगा ? कहीं भी किसी ओर उसे कूल किनारा-नहीं सूझ रहा था।

आज उसने रसोई बनानेकी भी कोशिश नहीं की और न पढ़ने ही गया; कमरेमें जाकर पड़ा रहा।

छिपे-छिपे रोते रहनेसे ही शायद कल रातको नरायनीको बुखार आ गया था। दोपहरको दिगम्बरीने कटोरा-भर दूध लाकर कहा—पीना ही पड़ेगा। बिना खाये-पीये मरेगी क्या? नरायनीने विरोध न करके दूधका कटोरा हाथमें ले लिया और थोड़ा-सा पीकर नीचे रख दिया, फिर वह करवट बदलकर सो रही। उसे 'नहीं-नहीं' कहनेमें भी घृणा मालूम होने लगी।

रातके नौ बज चुके हैं। नृत्यकालीने आकर धीरेसे कहा—बहूजी, छोटे बाबूकी तो आवाज भी नहीं सुनाई देती,—इतनी रात हो गई।

नरायनी घबराकर उठ बैठी, आँखोंसे टप-टप आँसू टपकने लगे, रोती हुई बोली—जा बहनी मेरी, देख आ, घरमें है कि नहीं।

नृत्यकालीकी भी आँखें डबडबा आईं। हाथसे आँसू पोंछती हुई "जानेका हियाय नहीं पड़ता, बहूजी" कहकर बाहर चली गई और भोलाको बुला लाई। भोलाने समाचार दिया कि भइयाजी घरमें हैं,—सो रहे हैं। नरायनी दोनों हाथ जोड़के सिरसे लगाके चादर ओढ़कर फिर पड़ रही।

दूसरे दिन, सबेरा होनेसे पहले, अँधेरे ही नहा-धोकर उसने रसोई चढ़ा दी। जब आधी रसोई बन चुकी तो दिगम्बरी जागी और बेटीकी यह करतूत देखकर मारे आश्चर्यके दंग रह गई। कर्कश स्वरमें प्रश्न किया—तुझे तो बुखार आया था न, नरायनी? तीन दिनसे तो तूने कुछ खाया नहीं है। अँधेरे ही नहा-धोकर, यह क्या हो रहा है, सुनूँ तो सही?

नरायनीने स्वाभाविक सरलतासे जवाब दिया—देख तो रही हो, रसोई बना रही हूँ।

"सो तो देख ही रही हूँ, मगर क्यों? मालूम भी तो पड़े? तू क्या मेरे हाथका अब नहीं खायगी?"

नरायनीने कुछ जवाब नहीं दिया, अपने काममें लगी रही।

कल दिन-भर राम सोचता रहा; भाभीके न जाने कितनी चोट लगी होगी। वह एक कच्चा अमरूद लाकर बार-बार अपने कपालपर ठोंककर उस चोटके गुरुत्वके आजमानेकी कोशिश करता रहा। फिर सोचने लगा, क्या करनेसे इस

कुकर्मका प्रायश्चित्त हो सकता है। सोचते-सोचते उसको याद आ गया कि कुछ दिन पहले भाभीने उसे यहाँ रहनेको मना किया था। उसने तय कर लिया कि वह और कहीं चला जायगा, तो भाभी खुश हो सकती है। उसकी ननसाल तारकेश्वरसे और आगे है; मगर ठीक कहाँ है उसे नहीं मालूम था। वहाँ जाकर ढूँढ़ लेगा; यह संकल्प करके उसने एक छोटी-सी पोटली बाँधी और बैठकर सबेरा होनेकी बाट जोहने लगा।

नरायनी पूरी रसोई बना चुकनेके बाद एक थालीमें सब चीजें खूब अच्छी तरह तरतीबसे परोस रही थी। इतनेमें दरवाजेके पास भोलाने आकर पुकारा—अम्माँ!

नरायनीने मुड़कर भोलाको देखकर पूछा—क्या है रे भोला?

पिछले कई दिनसे वह गायकी देख-भाल जरूर करता रहा है, पर रामके डरके मारे भीतर नहीं आया। भोलाने आहिस्तेसे कहा—कानमें एक बात कहनी है, अम्माँ!

नरायनीके पास आकर उसने फुसाफुसाते हुए कहा—तुमने जो कहा था, वही होगा, अगर दो रुपया दे दो तो।

नरायनी समझ न सकी, बोली—क्या होगा रे? किसे रुपया देना होगा?

भोला अचरजमें पड़ गया, बोला—तुमने भइयाजीसे कहा था न जानेको? वे जानेको तैयार हैं,—अच्छा, दो नहीं तो एक ही रुपया दे दो!

नरायनी अकुलाकर बोली—कहाँ जानेको तैयार है रे? कहाँ है वो?

भोलाने कहा—बाहर पीपरके नीचे खड़े हैं। कहीं उस तरफ उनकी ननसाल है न?

"जा भोला, तू जल्दी लिवा ला,—कहना, मैं बुला रही हूँ।"

भोला भागता हुआ चला गया। नरायनी पत्थरकी तरह वहीं खड़ी रही। थोड़ी देर बाद राम एक छोटी-सी पोटली हाथमें लटकाये सामने आकर खड़ा हो गया। नरायनी चुपचाप हाथ पकड़कर उसे घरके भीतर खींच ले गई।

दूरसे दिगम्बरीने जो रामको रसोईघरमें घुसते देखा तो उसके होश फाख्ता हो गये। मारे आशंकाके वह दौड़ी-दौड़ी रसोईघरमें पहुँची। वहाँ देखती है: सजी हुई थालीके सामने नरायनी रामको गोदमें लिये बैठी है, राम उसके

छातीमें मुँह छुपाये हुए है और उसके सिरपर, पीठपर, नरायनीके टपटप आँसू टपक रहे हैं।

भौंचक होकर कुछ देर दिगम्बरी देखती रही, फिर बोली—मैं क्या जानती थी,—इसीलिए इतने सुबहसे उठकर यह सब हो रहा था! भोजन कराया जायगा, जान पड़ता है!—और मेरे दामादने जो इतनी बड़ी कसम दी थी सो भाड़में चली गई?

नरायनोने मुँह उठाकर कहा—भाड़में क्यों जायगी माँ, उनकी बात मैंने अमान्य नहीं की है, तीन दिन न तो मैंने खुद कुछ खाया और न इसे खिलाया।

दिगम्बरी तीखे स्वरमें बोली—इसीको कहते होंगे अमान्य नहीं की! तो फिर यह क्या हो रहा है? जिसने कसम दी उससे एक बार पूछ तो लेती!

नरायनीने मानो एक कड़ी चोट सहते हुए संक्षेपमें कहा–मैंने पूछ लिया है।

दिगम्बरीको विश्वास नहीं हुआ। और भी ज्यादा क्रोधित होकर बोली—मैं दूधपीती बच्ची नहीं हूँ नरायनी! तूने पूछ लिया और मुझे मालूम भी न हो सका!

अब नारायनीसे न सहा गया। वह भी कठोर होकर बोली—तुम्हें कैसे मालूम होगा माँ, किससे कब कैसे मैंने पूछा? माँ, जिसके जबान है वह कसम दे सकता है; मगर—इतना कहकर वह रुक गई और गहरे स्नेहसे रामका लज्जित मुँह जबर-दस्ती छातीपरसे उठाकर उसका ललाट चूमकर बोली—मगर जिसे अपनी छाती-से लगाकर इतनेसे बड़ा करना पड़ता है, वह जानती है कि कैसे पूछा जाता है और कैसे इजाज़त मिलती है। तुम्हें फिकर करनेकी जरूरत नहीं माँ, अभी जरा सामनेसे चली जाओ, इसे कौर-घूँट खिला दूँ। मेरे बच्चेने तीन दिनसे कुछ खाया नहीं है।

कहते-कहते उसकी आँखोंसे फिर आँसुओंकी धार बह चली।

दिगम्बरीने क्षण-भर ठहरकर कहा—भला अब मैं यहाँ किस तरह रह सकती हूँ? इस घरमें अब मेरा रहना नहीं हो सकता, तुमसे साफ कहे देती हूँ।

नारायनीने कहा—मैं भी यही बात तुमसे कहना चाहती थी, पर मुँह खोल-कर कह नहीं सकी थी; सचमुच ही माँ, अब तुम्हारा यहाँ रहना नहीं हो सकेगा। तुम्हारी आँखों ही आँखोंसे मेरा इतना बड़ा लड़का आधा रह गया। यह चाहे

दुष्ट हो, चाहे कैसा ही हो; मेरे घरमें, मेरी आँखोंके आगे किसीको इसे सजा नहीं देने दूँगी। आज तुम यहीं रहो, लेकिन कल तुम अपने घर जरूर चली जाना। तुम्हारे लिए खर्चा-वर्चा मैं बराबर भेजती रहूँगी। लेकिन यहाँ अब तुम्हारा रहना नहीं होगा।

दिगम्बरी काठ हो गई और कुछ देर खड़ी रहकर धीरेसे बाहर निकल गई। राम उसी तरह छातीमें मुँह छुपाये हुए धीरे-धीरे बोला—नहीं भाभी, उन्हें यहीं रहने दो, अब मैं अच्छा हो गया हूँ, अब मुझे सुमति आ गई है—अबकी बार तुम और देख लो!

नरायनीने और एक बार उसका मुँह उठाकर ललाटपर ओठ छुला दिये और आँसुओंके भीतरसे मुस्कराते हुए कहा—अब तू खा ले।

———

पथ-निर्देश

१

जब किसी मध्यम श्रेणीके परिवारका मुखिया तपेदिककी बीमारीसे मर जाता है तो वह अपने साथ घरवालोंको भी अधमरा कर जाता है। सुलोचनाके पति पतितपावन भी ठीक यही कर गये। साल-डेढ़ साल बीमार रहकर, बरसातके दिनोंमें एक दिन, आधी रातको उनकी मृत्यु हो गई। सुलोचना कल पतिको अन्तिम प्रायश्चित्त कराकर उनके पास जाकर जो बैठी, सो फिर नहीं उठी। पति-ने जिस तरह चुपचाप प्राण छोड़ दिये, सुलोचना भी उसी तरह चुप-चाप बैठी रही; शोर मचाकर सारे मुहल्लेको उसने सिरपर नहीं उठाया। तेरह सालकी कुँआरी कन्या हेमनलिनी थोड़ी देर पहले चटाई बिछाकर पास ही सो गई थी, उसे भी उसने नहीं जगाया। वह बराबर सोती रही,—पिताकी मृत्युकी बात जान भी न सकी। घरमें कोई नौकर नहीं, नौकरानी नहीं; कुनबे-गोतेका तो दर किनार, दूरके रिश्तोंका कोई अपना कहलानेवाला आदमीतक पास नहीं। मुहल्लेवाले भी धीरे-धीरे थक गये थे। और आज तो, खासकर शामसे वर्षा शुरू हो जानेसे, जो कोई जागनेके बहाने सोने आता था, वह भी नहीं आया।

बाहर मूसलधार वर्षा हो रही थी। भीतर सुलोचना मृत पतिके सामने एकटक देखती हुई पत्थर-सी बैठी थी। दूसरे दिन खबर पाकर लोग आये और मुरदेको बाहर निकालके अरथी बनाकर मसान ले गये। स्त्रियाँ रीतिके अनुसार गोबरका पानी छिड़ककर रोने बैठ गईं।

सुलोचनाके पास सम्पत्तिके नाम सिर्फ एक छोटा-सा आमका बगीचा बच रहा था। मुहल्लेवालोंकी मददसे उसे ही सौ रुपयेमें बेचकर यथासमय विधवाने अपने पतिकी तेरही वगैरह कराई और फिर चुपचाप अपने घर बैठ रही। लड़कीने पूछा—क्या होगा माँ अब?

माँने जवाब दिया—डर क्या है बेटी, भगवान् तो हैं।

तेरही करनेके बाद जो कुछ बचा था उससे एक महीना तो किसी कदर बीत गया। उसके बाद कोई चारा न देख वह एक दिन सबेरा होनेसे पहले ही घरमें ताला लगाके लड़कीका हाथ पकड़कर रास्तेपर आ खड़ी हुई।

लड़कीने पूछा—कहाँ जाओगी माँ ?

माँने कहा—कलकत्ते, तेरे भइयाके घर।

"मेरे भइया कौन हैं माँ ? कभी तो तुमने उनका जिकर नहीं किया !"

माँने जरा ठहरकर कहा—अबतक मैं उसे भूली हुई थी, बिटिया।

हेम बहुत ही बुद्धिमती लड़की है, वह ठिठक कर खड़ी हो गई, बोली—नहीं माँ, दूसरेके घर जानेकी जरूरत नहीं। अपने घर रहकर मेहनत-मजूरी करके रूखी-सूखी खा लेना अच्छा, पर दूसरेके घर जाना अच्छा नहीं। माँ, मैं घर छोड़कर नहीं जाऊँगी।

सुलोचनाने अकुलाकर कहा—खड़ी मत हो हेम, दिन निकल आवेगा।

चलते हुए कहा—उन्होंने तुझे इतना पढ़ाया-लिखाया है,—उस सबको तू पानीमें मत डाल। तू मुझसे क्या कहेगी हेम, इतना तो मैं भी जानती हूँ कि घरमें रहकर महतारी-बिटिया किसी न किसी तरह दिन काट लेंगी,—मगर तेरा ब्याह कैसे कर सकूँगी ?

हेमने कहा—न सही ब्याह !

"जात-बिरादरीवाले क्या कहेंगे ? जातसे निकाल न देंगे ?"

हेमने कहा—जातका क्या करना है माँ ? हम दोनों माँ-बेटी रहेंगी,—मेहनत-मजदूरी करके पेट भर लेंगी, हमारी जात रहे तो क्या और न रहे तो क्या ? दुनियामें और भी बहुतेरी जातें हैं, लड़कीका ब्याह न करनेसे उनकी तो जात नहीं जाती। हम भी उन्हींकी तरह रहेंगी।

लड़कीकी बात सुनकर इतने दुःखमें भी सुलोचनाको हँसी आ गई, बोली—उस हालतमें भी गाँव छोड़ना पड़ेगा। जात जानेपर कोई घरमें झाड़ू देनेको भी न बुलायेगा।

हेमने फिर कोई जवाब नहीं दिया। बहुत-सी दुःखपूर्ण स्मृतियाँ यकायक जाग उठीं, किसी तरह उन्हें हटाकर वह चुपचाप रास्ता तय करने लगी।

जो रास्ता किनारे-किनारे गाँवके भीतरसे घूमता हुआ श्रीरामपुर स्टेशनको गया था, उसी रास्तेसे डेढ़-दो कोस चलनेके बाद सिद्धेश्वरीका मन्दिर पड़ा,—वहाँ ठहरकर दोनोंने भक्तिपूर्वक देवीके दर्शन किये। मन्दिरसे निकलकर हेमने कहा—माँ, दिन निकल आया, अब मुझे चलनेमें शरम लगती है।

सुलोचना खुद भी रास्तेमें इस तरह चलनेकी आदी नहीं थी, उसे भी शरम मालूम हो रही थी। एक वृद्धा गङ्गा नहाने जा रही थी, उससे पूछा—माँजी, श्रीरामपुर स्टेशनका यही रास्ता है न?

वृद्धाने कुछ देर इनकी ओर गौरसे देखकर कहा—तुम कहाँसे आ रही हो बेटी?

सुलोचनाने उसकी बातका कोई जवाब न देकर फिर पूछा—स्टेशन जानेका और कोई रास्ता नहीं है माँजी?

मन्दिरके सामने एक पतली-सी गली है जो सीधी रेल-लाइनतक गई है। वृद्धाने उसी गलीकी ओर इशारा करके कहा, यह गली ब्राह्मणोंके घरोंके सामनेसे सीधी रेलतक गई है। इस गलीसे चली जाओ, रेलकी पटरीके बगलसे सीधी बाईं ओर चली जाना, स्टेशन पहुँच जाओगी। जाओ बिटिया, कुछ डर नहीं है। कोई कुछ नहीं कहेगा।

सुलोचना किसी तरहकी दुविधामें न पड़कर लड़कीका हाथ पकड़े उस गलीमें चल दी।

२

आमहर्स्ट स्ट्रीटपर गुणेन्द्रका आलीशान मकान लगभग खाली ही पड़ा था। तिमंजलेपर एक कमरेमें वह सोता है और एकमें पढ़ता-लिखता है। बाकी ऊपर-नीचेके सब कमरे खाली पड़े हैं। नीचेकी एक कोठरीमें रसोइया रहता है और दोमें नौकर और दरबान।

गुणेन्द्रके पिता लोहेका काम करते थे। मरनेसे पहले वे इतना रुपया छोड़ गये हैं कि उनकी एक छोड़ दस सन्तानें होतीं, तो भी किसीको रोजगार करनेकी जरूरत न होती। वे रुपये तथा पिताका लोहेका कारोबार बेचकर जो रुपये आये थे, सब बैङ्कमें जमा करके गुणेन्द्र निश्चिन्त होकर वकालत करता था। दिनके

दस बजे थे, अबतक वह बैठा किताब ही पढ़ रहा था। नौकरने आकर कहा—बाबूजी, नहानेका समय हो गया है।

"आता हूँ।" कहकर वह फिर पढ़ने लगा।

नौकर थोड़ी देर बाद फिर आया और बोला—बाबूजी, दो स्त्रियाँ आई हैं, आपसे मुलाकात करना चाहती हैं।

गुणेन्द्रको बड़ा आश्चर्य हुआ, उसने किताबपरसे निगाह उठाकर पूछा—मुझसे?

"जी हाँ बाबूजी, आपसे। आपकी—"

बात पूरी भी न हो पाई थी कि सुलोचना कमरेमें आ पहुँची। गुणेन्द्र किताब बन्द करके खड़ा हो गया।

सुलोचनाने नौकरकी तरफ देखकर कहा—तू जा, अपना काम कर।

नौकरके चले जानेपर सुलोचनाने कहा—गुनी, तुम्हारे बाबूजी कहाँ हैं बेटा? गुणेन्द्र अवाक् होकर देखने लगा, कुछ जवाब न दे सका।

सुलोचनाने जरा हँसकर कहा—चेहरा देखकर अब मुझे नहीं पहचान सकते बेटा? करीब बारह वर्ष पहले तुम्हारे इस बगलवाले मकानमें हम लोग रहते थे। जिस साल तुम्हारा जनेऊ हुआ था, उसी साल हम लोग देश चले गये थे। तुम्हारे बाबूजी क्या दुकान गये हैं?

गुणेन्द्रने कहा—बाबूजीको मरे तो आज तीन साल हो गये।

"अरे उनका इन्तकाल हो गया! और तुम्हारी बुआजी?"

"वे भी नहीं रहीं। बाबूजीसे पहले ही चल दी थीं।"

सुलोचनाने एक गहरी साँस लेकर कहा—बस, एक मैं ही रह गई, और तो सब चल दिये। जब तुम्हारी माँ मरी थीं, तब, तुम सात बरसके थे। उसके बाद जनेऊ होनेतक मैंने ही तुम्हें पाला था। क्यों गुनी, तुम अपनी 'मौसी'को बिलकुल भूल गये?

गुणेन्द्रने उसी वक्त जमीनसे सिर लगाकर प्रणाम किया, पैरोंकी धूल लेकर माथेसे लगाई और फिर कहा—मौसीजी, तुम हो?

सुलोचनाने हाथ बढ़ाकर उसकी ठोड़ी छुई, फिर अपनी उँगलियाँ चूमकर कहा—हाँ बेटा, मैं तुम्हारी वही मौसी हूँ।

गुणेन्द्रने एक चौकी खिसकाते हुए कहा—बैठ जाओ मौसीजी।

सुलोचनाने मुसकराकर कहा—जब तुम्हारे आश्रयमें आई हूँ तो बैठूँगी तो जरूर ही। क्यों बेटा, तुमने क्या अभीतक ब्याह नहीं किया?

अबकी बार गुणेन्द्र हँस पड़ा, बोला—अभी समय कहाँ हुआ है?

सुलोचनाने कहा—अब हो जायगा।—घरमें कोई स्त्री नहीं है?

"नहीं।"

"रसोई कौन बनाता है?"

"रसोइया है।"

सुलोचनाने कहा—रसोइयाकी अब जरूरत नहीं, अबसे मैं ही बनाया करूँगी। अच्छा, यह सब पीछे होता रहेगा। मुझे और भी दो-चार बातें कहनी हैं, सो कह लूँ। हेमके बाबूजीका जब यहाँसे काम छूटा, तो हम लोग देश चले गये। पासमें, कुछ रुपये थे, और देशमें थोड़ी-सी जमीन-जायदाद भी थी। इतने-से मजेमें गुजर हो जाया करती थी। उसके बाद पिछले साल उन्हें तपेदिक हो गया। इलाज करानेमें, हवा बदलनेके लिए पहाड़पर जानेमें, जो कुछ पास-पल्ले था सब स्वाहा हो गया; और आखिरकार उन्हें बचा भी न सकी। महीनाभर हुआ, उनका इन्तकाल हो गया। अब तुम्हारा ही भरोसा है बेटा, पेट-भरनेको रोटी देनी होगी—बस यही प्रार्थना है।

उसकी आँखोंसे टप-टप आँसू गिरने लगे, गुणेन्द्रकी भी आँखें डबडबा आईं।

उसने कातर स्वरसे कहा—लड़का माँको खाने-पहरनेको भी न देगा, तुम क्या ऐसी धारणा लेकर आई हो मौसी?

सुलोचनाने आँचलसे आँसू पोंछते हुए कहा—नहीं बेटा, ऐसा सोचती तो शायद इतने दुखमें भी यहाँ न आती। तुम्हें इतना-सा देख गई थी; आज बारह वर्ष बाद मुसीबतके दिनोंमें तुम्हारी याद आते ही बिना किसी संकोचके यहाँ चली आई। इसके सिवाय और भी एक बात है। मेरी लड़की हेमनलिनी तुम्हारी बहन ही समझो,—मुझसे भी ज्यादा अनाथ है। ब्याहकी उमर हो गई, पर अभीतक उसके हाथ पीले न करा सकी। उसके लिए भी तुम्हें ही प्रयत्न करना होगा।

गुणेन्द्रने कहा—उसे साथ लेती क्यों नहीं आईं माँ?

सुलोचनाने कहा—उसे भी लाई हूँ। वह बड़ी अभिमानिनी है। कहीं ये

सब बातें सुन न ले, इसलिए उसे नीचे छोड़कर मैं अकेली ही ऊपर आई हूँ।

गुणेन्द्रने व्यस्त होकर जोरसे नौकरको पुकारकर कहा—नन्दा, नीचे हेम बैठी है, जा, जल्दी ऊपर लिवा ला।

सुलोचनाने कहा—उसे पार करनेमें तुम्हारा जो खर्च होगा, उससे मैं कभी उऋण नहीं—

गुणेन्द्रने बीचहीमें टोककर कहा—ऐसा कहोगी माँ, तो मैं उठकर बाहर चला जाऊँगा, फिर तुम जो जीमें आवे कहती रहना। और अगर मैं, माँके मरने-के बाद तुमने जो मुझे पाल-पोसकर बड़ा किया था, उस ऋणकी सब बातें कहने लगूँ, तो तुम्हें भी मारे शरमके बाहर उठ जाना पड़ेगा,—मैं कहे देता हूँ। इससे यही अच्छा है कि उन बातोंका जिक्र ही न किया जाय। तुम भी चुप रहो, मैं भी कुछ नहीं कहूँगा।

सुलोचनाने हँसते हुए कहा—अच्छी बात है, जाने दो। हाँ, अब हेम आ रही है, उसके सामने कह नहीं सकूँगी,—एक बात और कहनी है, सो कह लूँ। तुम यह न समझना कि माँ हूँ, इसलिए कह रही हूँ। हेम आती ही है। तुम खुद देख लेना। तुम्हारी बहन रूप-गुण-स्वभावमें किसी भी आदमीके लिए अयोग्य न होगी। उसके बापने उसे काफी पढ़ाया-लिखाया है। आखिरी कई साल तो उन्हें इसके सिवा कोई काम ही न था। मैं कहती हूँ, हेम जिस घरमें जायगी उस घरमें उजालेका ही काम करेगी।—ओ हेम, इधर आ बेटा,—ये तेरे गुणी भइया हैं। इन्हें प्रणाम कर।

हेमने कमरेमें घुसकर घुटने टेककर प्रणाम किया और नीचा सिर किये खड़ी हो गई। उसके पथ-श्रमसे थके हुए चेहरेकी ओर देखकर गुणेन्द्र किंकर्तव्य-विमूढ़ होकर खड़ा रहा। सुलोचनाने, शायद इस बातको लक्ष्य करके ही कहा—गुणी, हेमको तुम्हारे ही हाथ सौंप देती अगर देशाचार कोई रुकावट न डालता। मेरे मरनेपर हेमको दस दिनका सूतक लगेगा, तुम्हें भी तीन दिन मानना पड़ेगा, इसीसे धरमसे यह तुम्हारी बहन होती है।

गुणेन्द्रने अपनेको सँभालते हुए हेमसे कहा—हेम, सुन लिया तुमने? हम दोनोंकी एक माँ हैं। माँके घरमें जैसा मैं हूँ, वैसी ही तुम। चलो तुम्हारे खाने-पीनेका इन्तजाम कर दूँ।

सुलोचना सहसा कह उठी—गुणी, तुम्हारे गलेमें जनेऊ नहीं दीखता ?

गुणेन्द्रने अपने गलेकी तरफ देखकर हँसते हुए कहा—हम ब्राह्मसमाजी जो हो गये हैं !

"ब्राह्मसमाजी ? छिः बेटा, यह काम तो तुमने अच्छा नहीं किया। खैर, कोई बात नहीं, प्रायश्चित्त करके जनेऊ ले लेना।"

गुणेन्द्रने कहा—यह तो बाबूजी ही कर गये हैं, मैंने नहीं किया; मगर इसके लिए प्रायश्चित्त करनेकी मैं कोई जरूरत नहीं समझता। ब्राह्मत भी बुरा नहीं है।

सुलोचनाको भीतर ही भीतर गहरी चोट पहुँची, वह बैठ गई। थोड़ी देर बाद एक गहरी उसास लेकर बोली—मालूम नहीं, क्यों लोगोंको ऐसी ऊँटपटाँग बातें सूझा करती हैं।

गुणेन्द्रने हँसकर कहा—ऊँटपटाँग बातोंकी चर्चा फिर होती रहेगी माँ, अभी तुम रसोईमें चलो।

३

बटोही जैसे पेड़-तले खिचड़ी राँधकर मिट्टीकी हँड़िया फेंककर चला जाता है और पीछेकी ओर मुड़कर देखता भी नहीं कि वह फूटी या बची, ठीक उसी तरह संसारमें निन्यानबे फी-सदी लोग सरस्वतीसे अपना काम निकालकर उन्हें लक्ष्मीके राज-पथके पीछे निर्मम होकर फेंक देते हैं,—एक बार फूटी निगाहसे देखते भी नहीं कि वे बचीं या मरीं। परन्तु गुणेन्द्र उनमेंसे नहीं है, उसकी गिनती एक-फी-सदीमें की जा सकती है। उसने शुरूसे ही सरस्वतीकी जैसी श्रद्धा की थी, वकील होनेके बाद भी वह उसी तरह करता रहा। उसका लाइब्रेरी-रूम पुस्तकोंसे भरा हुआ था। उसी घरमें हेमनलिनीको आश्रय मिला। गुणेन्द्र अपनी किसी भी चीजको सिलसिलेवार रखनेका आदी न था, इसलिए उसकी जो पुस्तक एक बार आलमारीसे निकल आती वह, अपने स्थानपर, फिर जल्दी न जाती थी। टेबिल, कुर्सी और अन्तमें गलीचेपर पड़ी-पड़ी कभी किसी दिन नन्दाकी सहायतासे आलमारीमें चली भी जाती, तो फिर जरूरत पड़नेपर उसे ढूँढ़ निकालना कोई आसान काम न था। उसके पास शायद पुस्तकोंकी एक सूची भी थी, मगर उसे काममें लानेका कोई उपाय नहीं था।

हेमने इस विश्रृंखलताको दो-चार दिनके अन्दर ही ठीक कर दिया। एक दिन वह एक आलमारीको खाली करके सब पुस्तकें नीचे रख रही थी, इतनेमें गुणेन्द्र आ गया। उसे देखकर हेमने कहा—गुणी भइया, उन किताबोंको इस आलमारी-में और इनको उस आलमारीमें रख दूँ तो सहूलियत होगी।

गुणेन्द्रने मुसकराते हुए कहा—क्या सहूलियत होगी?

हेमने कहा—वाह, सहूलियत क्यों न होगी? देखो न, ये किताबें यहाँ रखनेसे कैसी—

गुणेन्द्र बीचहीमें बोल उठा—हाँ हाँ, देख तो रहा हूँ, बड़ी सहूलियत होगी।

हेम एक चौकीपर रूठकर बैठ गई, बोली—तो रहने दो, जाओ, मैं नहीं रखती। अच्छा करो, तो भी तुम्हें बुरा लगता है।

गुणेन्द्र एक किताब उठाकर मुसकराता हुआ बाहर चला गया।

हेम दिन-रात इसी कमरेमें रहती थी, इसलिए गुणेन्द्र अब अपने सोनेके कमरेमें ही बैठकर पढ़ता-लिखता था। रविवारके दिन दोपहरको हेमने बाहरसे आवाज दी—गुणी भइया, भीतर आऊँ?

गुणेन्द्रने भीतरसे ही कहा—आओ।

हेमने कमरेमें घुसते ही कहा—तुम हर वक्त इस सोनेके कमरेमें बैठकर ही क्यों पढ़ा करते हो?

"इसमें हर्ज ही क्या है? इस घरमें विद्या कम थोड़े ही आयेगी?"

"लाइब्रेरीवाले कमरेमें पढ़नेसे कौन-सी घट गई थी?"

गुणेन्द्रने कहा—घटी तो न थी, मगर, कच्ची जरूर हो गई थी,—इस कमरे-में उसे पक्की कर रहा हूँ।

हेम पहले तो हँस पड़ी, फिर बात समझमें न आनेके कारण गंभीर होकर बोली—तुम्हारी सब बातें ऐसी ही होती हैं। कोई भी बात तुम सीधी तरहसे नहीं करते।

गुणेन्द्र मुसकराने लगा, उसने कोई जवाब नहीं दिया।

हेमने कहा – पर मैं सब समझती हूँ। उस कमरेमें मैं रहती हूँ इसीलिए तुम वहाँ नहीं पढ़ते। तुम मुझसे शरमाते हो। मगर मैं तुमसे जरा भी शरम नहीं करती।

गुणेन्द्रने पूछा—क्यों नहीं करतीं ? करना चाहिए।

हेमने सामने लटकती हुई लटोंको पीछेकी ओर हटाते हुए कहा—तुमसे मैं शरम क्यों करूँ, तुम क्या कोई गैर हो ? यह नहीं होगा भइया, चलो तुम उस कमरेमें।

और यह कहती हुई वह किताबें उठाकर चल दी।

गुणेन्द्र एक दिन हेमके रोजके पहननेके लिए हार, कड़े, चूड़ियाँ आदि खरीद लाया था। सुलोचनाने देखकर कहा—क्यों बेटा, यह सब क्यों लाया ?

गुणेन्द्रने कहा—इतनेसे क्या होगा माँ, अभी तो बहुत चाहिए। लड़की खाली हाथ थोड़े ही पार होगी !

सुलोचना आगे कुछ न कह सकी। परन्तु उसका मन भीतरसे उद्विग्न हो उठा। इन दोनोंने इतनी जल्दी किस तरह एक-दूसरेको अपना लिया, इस बातको वह बराबर सोचने लगी। एक दिन उसने गुणेन्द्रको बुलाकर कहा—अगले अगहनमें हेमका ब्याह कर देना है बेटा, जैसे बने, इस कामको करना ही है। लड़की बड़ी हो गई है।

गुणेन्द्रने कहा—इसके लिए निश्चिन्त रहो। मगर अच्छा लड़का भी तो देखना होगा, हाथ-पैर बाँधकर कुएँमें तो नहीं पटका जा सकता ?

सुलोचनाने एक गहरी साँस लेकर कहा—अच्छा-बुरा उसका नसीब है। हमारा काम हम करेंगे, उसके बाद भगवान्‌के हाथ है।

'सो तो ठीक है।' कहता हुआ वह चला गया। उसकी आँखोंके सामनेसे एक काली छाया-सी निकल गई। सुलोचनाने उसे देखा और वह एक लम्बी उसास भरकर अपने कामसे चली गई। मन ही मन बोली, नहीं, यह अच्छा नहीं हो रहा है, जितनी जल्दी हो सके, हेमका ब्याह कर देना ही ठीक है।

कई दिन बाद, हेमने कमरेमें घुसते ही कहा—अभीतक पड़े ही हुए हो, कपड़े नहीं पहने ? चलोगे नहीं ? उठो जल्दी।

गुणेन्द्र बिस्तरपर पड़ा हुआ चुपचाप हेमकी तरफ देखता रहा। हेमने आलमारीके पास जाकर खटसे आलमारी खोली और मुट्ठीभर नोट और रुपये निकालकर आँचलमें बाँध लिये। फिर चाबी बन्द करके पास आकर कहा—तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ गुणी भइया, अब देरी मत करो, उठो। दूकान बन्द

हो जायगी।

गुणेन्द्रने उसकी पोशाक देखकर कुछ-कुछ अनुमान कर लिया था, फिर भी पूछा—कहाँ चलना होगा?

हेमने अकुलाकर कहा—वाह! घंटे-भर पहले गाड़ी तैयार करनेको कह दिया है; अब पूछते हो कि कहाँ चलना होगा!

गुणेन्द्रने कहा—इससे कोचवानको मालूम हो सकता है कि कहाँ जाना है, मैं तो कोचवान नहीं हूँ, मैं कैसे जानूँ?

हेमने हँसकर कहा—तुम कोचवान क्यों होने लगे भइया,—चलो जल्दी; दूकान बन्द हो जायगी।

"कौन-सी दूकान?"

"किताबोंकी दूकान। तुमसे मानदाने नहीं कहा? मैंने उससे कहला दिया था जो। हालमें बहुत-सी अच्छी-अच्छी किताबें निकली हैं—मैंने एक लिस्ट तैयार कर ली है!"

उसके हाथमें एक कागज देखकर गुणेन्द्रने हाथ बढ़ाते हुए कहा—देखूँ लिस्ट।

"नहीं, लिस्ट देखोगे तो तुम खरीदने नहीं दोगे।"

"तो फिर छुपाकर खरीदनेपर भी पढ़ने न दूँगा।"

हेमने थोड़ी देर चुप रहकर कहा—अच्छा चलो, गाड़ीमें दिखाऊँगी।

शामके वक्त दोनों गाड़ीभर किताबें खरीदकर घर लौटे। सुलोचनाने देखकर कहा—इतनी किताबोंका क्या होगा री?

गुणेन्द्रने कहा—मालूम नहीं माँ, ये सब हेमकी किताबें हैं! फिजूल अंट-संट किताबें खरीदकर रुपये बरबाद कर आई है।

सुलोचना ने कहा तुमने दिये क्यों भइया?

गुणेन्द्रने कहा—मैं क्यों देने लगा? चाबी उसके पास रहती है, उसने अपने हाथसे रुपये निकाले—गाड़ी तैयार करनेको कह दिया, और खुद जाकर खरीद लाई,—मैं तो सिर्फ साथ गया था।

हेमने बहुत-सी पुस्तकें नन्दाके द्वारा मानदाको भेज दीं और कुछ खुद उठाकर ऊपर ले गई। सुलोचनाने गुणेन्द्रसे कहा—बेटा, इतना सिर चढ़ाना

अच्छा नहीं। जाने कहाँ किसके हाथ पड़ेगी, तकलीफ पायेगी।

गुणेन्द्रने ऊपर लाइब्रेरी रूममें जाकर देखा कि हेम बत्तीके पास बैठी पुस्तकोंके पीछे गोंदसे नंबरकी चिटें चिपका रही है। कहा—माँने कहा है, तुम्हें इतना सिर चढ़ाना ठीक नहीं। जाने कहाँ किसके हाथ पड़ोगी, तब तकलीफ उठाओगी।

हेमने मुँह फेरकर गुस्सेमें आकर कहा—क्यों तकलीफ उठाऊँगी? मुझे किसी गरीबके दुःखी घरमें दोगे तो मैं दूसरे ही दिन भाग आऊँगी।

गुणेन्द्रने हँसकर कहा—अच्छी बात है!

हेमने आगे कुछ जवाब नहीं दिया, वह अपना काम करने लगी। गुणेन्द्र कुछ देरतक चुपचाप उसकी ओर देखता रहा, और फिर एक बिलकुल छोटी साँसको दबाकर अपने कमरेमें चला गया।

दुर्गा-पूजा खतम हो गई। दशहरेके दिन गाड़ीमें बैठकर हेम देव-मूर्तिका जल-विसर्जन देखने गई और घर आकर माँको प्रणाम करके ऊपर चली गई। ऊपर खुली छतपर चाँदनी रातमें गुणेन्द्र अकेला टहल रहा था, हेमने सामने जाकर पैर छूकर उसे प्रणाम किया और पैरोंकी धूल सिरपर लगाकर खड़ी हो गई। गुणेन्द्र कुछ बोला नहीं, एकटक उसके मुँहकी ओर देखने लगा, इससे हेम कुछ शरमा-सी गई। फिर भी उसी वक्त बोली—मुझे असीस नहीं दी गुणी भइया?

गुणेन्द्रकी नींद-सी टूट गई। वह जल्दीसे कह उठा—दी क्यों नहीं?

"कहाँ दी?"

"मन ही मन दी है।"

हेमने हँसीको दबाकर कहा—अच्छा, क्या असीस दी मुझे बताओ?

गुणेन्द्र मुसीबतमें पड़ गया, अन्तमें गम्भीर होकर बोला—असीस देकर कहना नहीं चाहिए। नहीं तो उसका फल मारा जाता है।

हेमने कहा—अच्छा, जाने दो, तुमने माँको प्रणाम किया?

"सो तो रोज ही करता हूँ।"

हेमने अकुलाकर कहा—नहीं, नहीं, सो नहीं होगा; आज दशहरा है, दशहरेको प्रणाम नहीं करोगे? जल्दी जाओ, नहीं तो मनमें दुखी होंगी।

गुणेन्द्र नीचे उतर गया।

लगभग आधा कार्तिक बीता होगा कि एक दिन हेमने अचानक कमरेमें

घुसकर कहा—तुम लोगोंके लिए क्या और कोई बातचीतका विषय ही नहीं है, और कोई काम ही नहीं है ? आखिर मैंने तुम्हारा बिगाड़ा क्या है ?

यह कहती हुई वह रोने लगी।

गुणेन्द्र भौंचक-सा रह गया, बोला—क्या हुआ हेम !

हेमने रोते-रोते ही कहा—जैसे कुछ जानते ही न हों—क्या हुआ है हेम ! माँ कह रही थी, शान्तिपुरमें या जाने कहाँ, सब कुछ ठीक-ठाक हो गया है ! और मैं अगर ब्याह न करूँ, तो क्या तुम लोग जबरदस्ती मेरे हाथ-पैर बाँधकर बहा दे सकते हो ?

गुणेन्द्र अब समझा और हँसता हुआ बोला—अच्छा, यह बात है ! बड़ी हो चुकी हो, तुम्हारा ब्याह नहीं किया जायगा ?

"नहीं।"

"नहीं ? ब्याह न होगा तो बिरादरीवाले जातसे निकाल न देंगे ?"

"तुमने भी तो ब्याह न किया, तुमको क्यों नहीं निकाल देते ?"

गुणेन्द्रने कहा—हम लोगोंकी बात दूसरी है,—हम ब्राह्मसमाजी जो हैं। मगर तुम्हारे यहाँ तो लड़कीका ठीक वक्तपर ब्याह न करो, तो बिरादरीसे छेक दिया जाता है। इसलिए—

हेमने आँखें पोंछते हुए कहा—तुम्हीं लोग अच्छे हो। तुम्हारे समाजमें आदमीयत है, इसीसे तुम लोग आदमीको इस तरह बाँधकर नहीं मारते। मैं इस घरको छोड़कर हरगिज न जाऊँगी,—तुम चाहे जितना षड्यन्त्र क्यों न रचो।

गुणेन्द्रने उसे शान्त करनेके अभिप्रायसे बहुत मुलायमियतके साथ कहा—वह भी खूब बड़ा घर है। देखनेमें भी वे बहुत अच्छे हैं, विद्वान् हैं, बुद्धिमान् हैं, बड़े आदमी हैं, वहाँ तुम्हें किसी तरहकी तकलीफ न होगी।

हेम जरा भी शान्त न हुई, फुरतीसे सामनेकी लटें हटाती हुई बोली—सो नहीं होगा,—किसी तरह न होगा, तुमसे मैं कहे देती हूँ। मुझे अगर तुम बोझ समझते हो, तो खाने-पहननेको मत दो। मैं बिना खाए-पीए ही किताबोंवाले कमरेमें रहूँगी,—कुछ भी नहीं माँगूँगी।

गुणेन्द्रने हँसनेकी कोशिश करते हुए कहा—वहाँ भी तुम्हें किताबोंवाला कमरा मिल जायगा। न मिले, तो तुम्हारा यह कमरा मैं वहाँ उठाकर पहुँचा आऊँगा।

हेमने उसकी बात सुनीतक नहीं। रोते हुए कहा—तुम्हें कुछ भी नहीं करना होगा गुणी भइया, कुछ भी नहीं। इसी अगहनमें न ? इसी एक महीनेके बाद ही ? तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ गुणी भइया, तुम इस सम्बन्धको तोड़ दो।

उसका रोना देखकर गुणेन्द्रकी आँखोंमें भी आँसू आ गये। उसने किसी तरह अपनेको सँभालकर कहा—यह कैसे होगा हेम ? अब नहीं हो सकता। बातचीत सब पक्की हो चुकी है।

"बातचीत क्या होती है पत्थर ! तुमने सम्बन्ध ठीक किया है, तुम चाहो तो उसे तोड़ सकते हो। मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ गुणी भइया, मेरी इस बातको मानो।"

सुलोचनाको कुछ शक हो गया था, वह उसके पीछे-पीछे ऊपर चली आई थी। कमरेमें आकर गुस्सेमें बोली—यह क्या हो रहा है हेम ? पागलोंकी तरह क्या बकती है ? सम्बन्ध पक्का हो जानेपर कहीं टूटता है ? तेरे भाग्य अच्छे हैं, जो ऐसा भाई मिला। ऐसा अच्छा घर मिला है,—उसे तू कहती है कि तोड़ दे। हिन्दू घरानेकी लड़की होकर क्या क्रिस्तानों जैसी कुँआरी धींगरी बनी रहेगी ? चल, नीचे चल।

हेम चली गई। सुलोचनाने गुणेन्द्रकी तरफ देखकर कहा—यह सब दिन-रात किताबें पढ़ते रहनेका फल है। चौबीसों घंटे नाटक-उपन्यास पढ़ते रहनेसे ऐसी ही ऊँटपटाँग बातें सूझती हैं। अगहनमें जैसे बने, इसे पार कर ही देना है।

गुणेन्द्र चुप बैठा रहा। सुलोचना और कुछ देर खड़ी रहकर धीरे-धीरे नीचे चली गई।

दो दिन बाद कचहरीसे लौटकर वह किसी किताबके लिए लायब्रेरी रूममें घुसा ही था कि हेमने भीतरसे कहा—भीतर मत आना गुणी भइया, मैं खा रही हूँ।

गुणी ठिठकर खड़ा हो गया, बोला—खाओ न। मेरे भीतर आनेसे ही क्या तुम्हारा खाना बिगड़ जायगा ?

हेमने कहा—सारे घरमें गलीचा बिछा हुआ है जो !

गुणेन्द्रने कहा—तुम्हारी नौकरानी मानदा जब आती है, तब तुम्हारा खाना नहीं बिगड़ता,—जात नहीं जाती। मैं क्या उससे भी गया-बीता हूँ ?

हेम अप्रतिभ हो गई, हँसकर बोली—अच्छा, आ जाओ, मैं खा चुकी।—

कहते हुए उसने थाली सरकाकर टेबिलके नीचे कर दी।

"नहीं, नहीं, तुम खाओ, मैं कपड़े बदलकर आता हूँ।" कहता हुआ गुणेन्द्र जल्दीसे चला गया, उसकी छातीके भीतर मानो आग-सी लग गई।

दूसरे दिन दस बजे गुणेन्द्र ज्यों ही खाकर उठा त्यों ही हेम कहींसे दौड़कर आ गई और गुणेन्द्रकी थालीमें खाने बैठ गई। महाराजसे बोली—महाराज, मुझे इसी थालीमें परोस दो।

महाराज दंग रह गया, बोला—इसमें तो अभी बाबूजी खा गये हैं।

हेमने कहा—हाँ हाँ, मालूम है, तुम दो न!

बगलके कमरेमें सुलोचना बैठी थी, सुनकर तुरंत उठ आई और बोली—यह क्या करती है हेम? यह तो गुणीकी जूठी थाली है; जा धोती बदलकर गंगाजल छिड़क आ।

हेमने जूठी थालीमें जो अवशेष भोजन था, उसमेंसे एक गस्सा मुँहमें देते हुए कहा—महाराज, परोसते क्यों नहीं? गुणी भइयाकी जूठी थालीमें खानेकी योग्यता संसारमें कितने आदमियोंमें है! तकदीर चाहिए, तब इस थालीमें खानेको मिलता है!

सुलोचना दंग होकर लड़कीके मुँहकी ओर देखती रह गई। महाराज और भी दाल-भात साग-तरकारी आदि लाकर थालीमें परोस गया।

गुणेन्द्र बरंडेके एक तरफ बैठकर मुँह-हाथ धो रहा था, उसने सब सुना। शामके बाद उसने कहा—आज हेमकी जात गई।

हेम नई किताब हाथमें लिये पढ़नेमें तल्लीन थी, मुँह बिना उठाये ही बोली—किसने कहा तुमसे?

"कोई भी कहे, गई तो सही?"

हेमने मुँह उठाकर कहा—हरगिज नहीं। तुम्हारी थालीमें खानेसे किसीकी जात नहीं जा सकती,—जिन लोगोंने जात बनाई है, उनकी भी नहीं।

गुणेन्द्र बगलकी कुर्सीको खींचकर बैठ गया, बोला,—कुछ भी हो, मगर तुमने यह काम अच्छा नहीं किया। जिसकी जो जात है उसे उसको मानकर चलना चाहिए। इसके सिवा, इससे माँको दुःख जो होता है।

हेम कुछ देर चुप रहकर यकायक कह उठी—मानो तुम सबसे नीच हो, सबसे छोटे हो! इसे तुम सह सकते हो, पर मुझसे नहीं सहा जाता। तुम्हारी

थालीमें बैठकर खानेसे माँको दुःख होता है, माना,—पर न खानेसे माँसे भी जो बड़े हैं, उन्हें दुख होता है। अच्छा अभी तुम जाओ,—अब मुझसे बका नहीं जाता, पढ़ूँगी।

यह कहती हुई वह खुली किताबपर झुक पड़ी और पढ़ने लगी।

गुणेन्द्रने कुछ देर चुपचाप बैठा रहा, फिर धीरेसे उठकर चला गया। उसकी आँखोंके ऊपरसे मानों एक काला परदा यकायक हट गया।

४

अगहनके अन्तमें नवद्वीपके एक रईसके घर हेमका ब्याह हो गया। वह दूरसे गुणी भइयाको प्रणाम करके पतिका घर सम्हालने चली गई। वहाँ उसके ससुर, सास, नदद कोई नहीं, घरमें सिर्फ एक बूढ़ी दादी है, और एक अविवाहित देवर कलकत्तेके किसी कालेजमें पढ़ता है।

किशोरी बाबूकी उमर छत्तीसके लगभग होगी। पहली स्त्रीके मर जानेपर वे बहुत दिनोंसे बड़ी उम्रकी लड़कीकी तलाशमें थे, इसीसे बिना देखे ही उन्होंने हेमको पसन्द कर लिया। ब्याह होनेके बाद वे सुलोचनाको भी अपने यहाँ बुलानेके लिए लिखा-पढ़ी करने लगे और पीछे पड़ गये। सुलोचना भी राजी हो हो गई! उसकी इच्छा थी, वह नवद्वीपमें रहकर पुण्य उपार्जन करे।

परन्तु हेमने लिख दिया—तुम जिस घरसे हो, उस घरकी हवा लगनेसे इस नवद्वीपका भी उद्धार हो सकता है। वहाँ रहकर भी अगर तुम पुण्य-संचय न कर सकीं तो बैकुण्ठ पहुँच जानेपर भी न कर सकोगी। भइयाको छोड़कर अगर तुम यहाँ आओगी, तो मैं खुद जाकर भइयाके पास रहूँगी।

अपनी लड़कीको वह पहचानती थी, इसीसे उसकी हिम्मत जानेकी न पड़ी, मगर मन उसका वहीं नवद्वीपके आस-पास रात-दिन घूमने लगा।

इसी तरह और भी छह महीने बीत गये। अन्तमें जब उससे बिलकुल ही न रहा गया तो एक दिन किसी उत्सवके बहाने नन्दाको साथ लेकर स्टीमरपर जा चढ़ी। वहाँ जाकर अपनी लड़कीको उसने जब बहुत ही कमजोर और उदास पाया, तो बड़ा दुःख हुआ। कहने लगी—यहाँ और कोई नहीं है, शायद तेरी कोई सम्हाल नहीं लेता। लड़कीने 'हाँ ना' कुछ भी जवाब नहीं दिया।

उत्सव खतम हो गया। मगर फिर भी उसकी कलकत्ते जानेको तबीयत नहीं हुई। माँका ढंग देखकर हेमने एक दिन कहा—माँ, कितने दिन रहोगी दामादके घर? लोग निन्दा नहीं करेंगे?

सुलोचनाने गुस्से होकर कहा—साफ कहती क्यों नहीं कि तुझे मैं भारी पड़ गई हूँ? अरे यह तो फिर भी अपनी लड़कीका घर है; वहाँ कौन-सा अपना घर है जो लौट जाऊँ, बता?

हेम कुछ देर अवाक् हो यों ही माँके मुँहकी ओर देखती रही, फिर बोली—तुम्हारा कोई दोष नहीं माँ, यह हम औरतोंका स्वाभाविक धर्म ही है। हम अपने और परायेको एक ही दिनमें भूल जाती हैं!

दिन बीतने लगे। फिर दुर्गापूजा आई। गुणेन्द्रने बड़ी धूम-धामके साथ 'पूजा'की सौगात भेजी। सुलोचना हेमको अलग ले जाकर बोली—गुणी है तो ब्राह्मसमाजी, पर जानता है सब रीत-व्योहार।

सुलोचनाने सब जगह प्रचार कर दिया कि मेरी अनुपस्थितिमें लड़केने ही अपनी बहिनको सौगात भेज दी है और अब मैं मिठाई वगैरह मुहल्लेमें बँटवाकर, कपड़े आदि सब चीजें सबको दिखाकर, पूजा देखकर कलकत्ते चली जाऊँगी। उसके जानेके बारेमें हेमने उस दिनसे और कोई जिक्र ही नहीं किया, आज भी वह चुप रही। सुलोचना इस बातको समझ ही न सकी; मन ही मन कहने लगी—अगर भगवानने कभी दिन दिखाये, तो तू समझ जायगी बेटी, कि सन्तानको छोड़कर जानेमें माँके प्राणोंपर कैसी बीतती है।

परन्तु पूजा खतम होते ही सुलोचनाको सख्त मैलेरियाने धर दबाया और दिनों-दिन उसकी हालत खराब हो चली। महीने-भर बाद, एक दिन, हेमने कहा—अब तो माँ, भगवानका नाम लो, या जीना चाहती हो, तो गुणी भइयाको पुकारो!

यह कहते-कहते उसकी दोनों आँखें भर आईं, और टपटप आँसू झरने लगे। ऊपरको दृष्टि किये वह स्थिर होकर बैठ रही। माँने कहा—सो ही कर बेटी, भइयाको चिट्ठी लिख दे।

हेमने घरके गुमाश्तेको बुलाकर माँको बुला लेनेके लिए गुणेन्द्रको चिट्ठी लिखा दी।

दो दिन बाद कलकत्तेसे मानदा और दरबान आ पहुँचे। हेमने आशा की थी कि भइया खुद ही आयेंगे। उसने मानदाको बुलाकर पूछा—गुणी भइया क्यों नहीं आये री ?

मानदाने कहा—वे भी बीमार हैं। दो हफ्ते हो गये, सर्दी-जुकाम, खाँसी-बुखार, एक न एक लगा ही रहता है। इधर कुछ-कुछ बुखार भी रहने लगा है, नहीं तो वे ही आते।

सुलोचना चली गई। गुणेन्द्रने दवा-दारूकी व्यवस्था करके नौकर-नौकरानी-के साथ उन्हें हवा बदलनेके लिए मधुपुर भेज दिया। जाते समय सुलोचनाने कहा—बेटा गुणी, तू मेरे साथ चल, तेरी तबीयत भी ठीक नहीं है। चल, दोनों जनें साथ चलें। पर गुणेन्द्र राजी न हो सका। कलकत्तेमें उसे काम था, वह रह गया।

मधुपुर जाकर सुलोचनाको आराम पड़ने लगा और कुछ ही दिनोंमें वह बिलकुल तन्दुरुस्त हो गई। नवद्वीप और कलकत्तेके लिए उसने चिट्ठियाँ लिखीं; उनमें लिखा कि जरा और ठीक होते ही माघके अन्ततक मैं कलकत्ते लौट जाऊँगी।

पिछले साल अगहन सुदीमें हेमका ब्याह हुआ था, आज फिर वही अगहन सुदी दसमी आ गई। सहसा इस बातकी याद आते ही गुणेन्द्रका ध्यान क्षण-भर-के लिए पुस्तकपरसे हट गया और वह मुँह उठाकर शून्य-दृष्टिसे जंगलेके बाहर देखने लगा। इतनेमें पीछेके दरवाजेसे नये दरबानने आकर कहा—बाबूजी, एक जरूरी तार आया है।

गुणेन्द्रने मुड़कर देखा—दरबान अपनी अक्लसे डाकियाको ऊपर ले आया है। डाकिया लिफाफा हाथमें देकर, दस्तखत लेकर और सलाम करके चल दिया।

गुणेन्द्रको तार पढ़कर बड़ा आश्चर्य हुआ। हेमने खबर दी है कि वह रवाना हो गई है, स्टीमरसे उतरकर हुगलीमें ट्रेनपर सवार होगी, तीन-चार बजेके करीब हवड़ा स्टेशनपर गाड़ी भेज दी जाय। किसलिए आ रही है, साथमें कौन-कौन हैं, किशोरी बाबू भी हैं या नहीं, या वह अकेली ही है, कुछ भी समझमें न आया। घरमें स्त्री कोई भी नहीं, क्योंकि सुलोचना मधुपुरमें थी, इससे गुणेन्द्र जरा पशो-पेशमें पड़ गया। पुराने कोचवानको गाड़ी लेकर स्टेशन जानेको कह दिया। शाम-

से कुछ पहले हेम घर आ गई। साथमें नौकरानी और कुछ जरूरी चीज-बस्त थी। हेमको देखते ही गुणेन्द्र ऊपरसे नीचेतक काँप उठा और बोला—यह पागलोंका-सा वेश बनाकर क्यों आई हो हेम ?

हेमने जमीनपर सिर टेककर प्रणाम किया, और कहा—ऊपर चलो, बताऊँगी।

ऊपर जाकर स्थिरतासे बैठकर उसने पूछा—माँ तो माघ माससे पहले आयेंगी नहीं ?

गुणेन्द्रने कहा—लिखा तो ऐसा ही है।

तो उन्हें तबतक खबर देनेकी जरूरत नहीं। मगर,—देखो, आश्चर्यकी बात है गुणी-भइया, परसाल ठीक आजहीके दिन बिदा हुई थी और आजहीके दिन लौट आई।

गुणेन्द्रकी समझमें न आया, उसने पूछा—तो लौट आई कैसे ?

हेमने स्वाभाविक स्वरमें कहा—लौट तो आई ही। वहाँ अब कैसे रह सकूँगी ? क्यों, तुम क्या मेरी सफेद धोती[1] देखकर भी नहीं समझ सकते ? परसों तेरही वगैरह सब क्रिया-कर्म हो चुकनेपर आज यहाँ चली आई।

गुणेन्द्र सुन्न होकर बैठ रहा। कुछ देर बाद अपनेको सम्हालकर बोला—कोई खबरतक तो नहीं दी—क्या हुआ था उन्हें ?

हेमने कहा—पिछले बुधवारके दिन शामको हैजाके लक्षण दिखाई दिये। उस जगह जितने किये जा सकते थे उतने इलाज किये गये, मगर किसीसे भी कुछ न हुआ। दूसरे रोज दस बजे दिनको उनके प्राण निकल गये।

गुणेन्द्रने कुछ देर बाद आँख बचाकर आँसू पोंछ डाले और कहा—मगर माँ सुनेंगी तो बचेंगी नहीं, मर जायँगी। जितने दिन उन्हें मालूम न हो उतने दिन अच्छा।

हेमने कहा—क्या करोगे गुणी भइया ? तुम लोग भगवान्‌के विरुद्ध षड्यंत्र कर रहे थे, इस बातको मैं मन ही मन खूब महसूस करती थी। पर तब, मेरी बात तुम लोगोंने बिलकुल नहीं मानी। अब रोना और हाय-हाय !—बड़ी भूख लगी है, क्या खाऊँ, बताओ ? लेकिन बहुत थक गई हूँ, अब मैं बना नहीं सकती।—कुछ फल-फलारी हो तो आजका दिन उसीसे काट लूँगी।

---

१. बंगालमें सफेद धोती विधवाएँ ही पहनती हैं।

गुणेन्द्रने पूछा—सबेरे भी कुछ नहीं खाया क्या ?

"नहीं। सुबह जल्द ही स्टीमरपर आना था।"

माघके अन्तमें सुलोचना भी आई, मगर निरोग होकर नहीं आ सकी। और फिर घर आकर जो यह दृश्य देखा, तो फिर खाट पकड़ ली। यह शोक उसकी छातीमें तीरकी तरह बिंध गया। इलाज और तीमारदारीकी हद कर दी गई, पर कोई नतीजा नहीं निकला। एक दिन उसके हाथ-पैर सूज आये तो गुणेन्द्रको बड़ी चिन्ता हो गई। उस दिन उसने भी गुणेन्द्रको अकेलेमें पाकर कहा—अब क्यों फिजूल कोशिश कर रहे हो बेटा ? अब मुझे जरा शान्तिसे जाने दो।

गुणेन्द्रने आँसू रोकते हुए कहा—ऐसा अभी क्या हुआ है माँ, जो तुम इतनी निराश हो रही हो ?

सुलोचनाने कहा—अच्छा, तू ही बता, आशा करनेके लिए अब मेरे पास क्या बचा है ?

गुणेन्द्र सिर झुकाकर चुपचाप बैठा रहा।

सुलोचनाने कहा—बेटा, मैं इतनी नादान नहीं हूँ। मैंने जान-बूझकर जो पाप किया है, वही भीतर ही भीतर मुझे पलपलमें जलाकर भस्म किये दे रहा है।

कुछ देर चुप रहकर फिर कहा—एक बात मुझे सच-सच बताना गुणी, मैं खूब जानती हूँ कि किसी दिन तू मेरी हेमको प्यार करता था। एक बार और कोशिश करे तो क्या उसे फिर प्यार नहीं कर सकेगा ?

गुणेन्द्रने सिर नीचे किये हुए ही कहा—उसे तो चिरकालसे ही प्यार करता हूँ माँ। तब भी करता था, अब भी करता हूँ। इसके लिए तुम कोई फिकर मत करो माँ, मेरे जीते-जी उसे कोई तकलीफ न होगी।

सुलोचनाने कहा—यह मैं जानती हूँ। अच्छा, तुम दोनोंके लिए यह मेरा अन्तिम आशीर्वाद है। अगर कभी जरूरत पड़े तो उससे यह कह देना। और एक बात बेटा,—यहाँ रहते हेमने मुझे ससुरालसे लिखा था—माँ, जहाँ तुम हो, उस घरकी हवा लगनेसे सारे नवद्वीपका उद्धार हो सकता है। उस घरमें रहते हुए भी अगर तुम पुण्य इकट्ठा न कर सकीं, तो बैकुण्टमें भी न कर सकोगी। बेटा, मरते वक्त तू मेरे सिरपर हाथ रखकर आशीर्वाद दे जिससे मैं पाप-

मुक्त हो जाऊँ। मेरा अपराध कितना बड़ा है गुणी, मेरे सिवा इसे और कोई नहीं जानता।

गुणेन्द्र रोने लगा। वास्तवमें वह सुलोचनाको माँकी तरह ही मानता और प्यार करता था। सुलोचनाने कहा—हेमसे मैं कोई भी बात कहकर नहीं जा सकती। उसके चेहरेकी तरफ देखते ही मेरी छातीके भीतर हाहाकार मच जाता है। लोग सौतेली माँकी कहानियाँ कहा करते हैं, परन्तु मैं सौतेली माँसे भी बढ़-कर उसकी दुश्मन हूँ।

दूसरे दिन बीमारी बहुत ज्यादा बढ़ गई। जीनेकी आशा बिलकुल न रही। जब साँस लेनेमें कष्ट होने लगा तो उसने हेमको अपने पास बुलाया। परन्तु चुम्बन करनेके लिए उसकी ठोड़ी पकड़ते ही वह रो पड़ी।

"हेम, अब बिदा होती हूँ बेटी।"

हेम माँकी छातीपर सिर रखकर फूट-फूटकर रोने लगी। कुछ देर बाद इशारेसे उठनेको कहकर माँ बोली—रो मत बिटिया। सुख-दुःखमें पन्द्रह साल तुझे छातीसे लगाकर बिताये हैं, आज समय आ गया, अब तेरे पिताके पास जा रही हूँ। आज मेरा आनन्दका दिन है। आज मैं रोती नहीं हेम,—हँसती हुई ही आनन्दसे जाती, अगर तुझे इस तरह नष्ट न कर डालती। आज मुझसे मारे शरम और दुःखके, तेरे मुँहकी तरफ ताकातक नहीं जाता बेटी।

हेमने रोते हुए कहा—ऐसा तुम क्यों कह रही हो माँ? मेरी तक़दीरमें जो था, सो ही हुआ; इसमें तुम्हारे हाथकी बात क्या थी?

सुलोचनाने रोकर कहा—मेरे हाथ तो मैंने अपने आप ही काट लिये हैं। तू कहती है, तकदीरमें जो था वह हुआ, मगर तेरी जैसी तकदीर इस देशमें और किसी भी लड़कीकी न थी बेटी, अगर मैं बीचमें पड़कर उसमें विघ्न न डालती। मैं सब कुछ जानती हूँ; इसीसे तो इस दुःखको रखनेके लिए जगह खोजकर भी नहीं पा सकती। अनजानमें जो पाप होता है, उसका प्रायश्चित्त है। मगर जान-बूझकर जो पाप किया जाता है, उसे कैसे मेटा जा सकता है बिटिया?

उसकी आँखोंसे बड़े-बड़े आँसू ढुलककर गिरने लगे। हेमने अपने आँचलसे उन्हें पोंछ दिया। थोड़ी देर बाद सुलोचनाने फिर कहा—माँपर गुस्सा मत करना बेटी, कहनेसे कहीं तेरा कोई अकल्याण न हो जाय, इसीसे मैं नहीं कह

सकी; नहीं तो आज मरते वक्त, हाथ जोड़कर कहती—

हेमने जल्दीसे मुँहपर हाथ रखकर रोते हुए कहा—क्या करनेसे तुम सुखी होगी मुझे बताओ, मैं वही करूँगी। मैंने तो कभी तुम्हारी बात नहीं टाली माँ।

सुलोचनाने बड़ी मुश्किलसे अपना काँपता हुआ हाथ हेमके सिरपर रखकर कहा—इसीसे तो जलकर भस्म हुई जा रही हूँ हेम। मुझे जो कुछ कहना था सो मैंने गुणीसे कह दिया है। जरूरत पड़नेपर वही तुझसे कहेगा। तू आज इस धोती-को बदल आ बेटी। जिस साड़ीको पहनकर एक साल पहले तू इस खाटके पास आकर बैठा करती थी, जो गहने पहनकर दशहरेके दिन तूने मुझे प्रणाम किया था, मेरे गुणीके दिये हुए वे ही गहने-कपड़े पहनकर मेरे सामने आ और घड़ी-भरके लिए ही सही, मेरे अपने किये हुए पापसे मुझे मुक्ति दे।

हेम चुपचाप उठ गई और माँकी आज्ञा पालन करके फिर आई। माँके ओठोंपर हर्षकी रेखा-सी दिखाई दी। उसने अपेक्षाकृत सुस्थ भावसे कहा—बेटी, इस चौंतीस वर्षकी उमरतक जो ज्ञान मुझे किसी भी दिन नहीं हुआ था, वह ज्ञान, वह बुद्धि, उस दिन एक क्षणमें ही आ गई जिस दिन मधुपुरसे लौटकर पहले ही पहल तुझे देखा। लोग कहते हैं, सिरपर बिजली गिरी,—मालूम नहीं बेटी, वह कैसी होती है, मगर उस दिन मुझे जो चोट लगी थी, उसकी आधी चोट भी अगर बिजली गिरनेसे पहुँचती हो तो वह चोट मेरे दुश्मनपर भी न पड़े। मेरी सौगन्ध है हेम, इस पोशाकको अब तू कभी मत छोड़ना। मालूम नहीं किस पत्थरने विधवाके लिए ऐसी पोशाक बनाई थी। आज मैं उसे शापती हूँ, भगवान् करे, उसे भी अपनी छातीपर मेरी तरह आघात सहना पड़े। नहीं-नहीं हेम, तू मुझे रोक मत बेटी, कलसे फिर मैं कुछ कहने नहीं आऊँगी। आज मैं चाहती हूँ कि मैं तेरे पिताजीके पास जाकर तुझे सुखी देख सकूँ।

फिर उनकी बोलती बन्द हो गई। हेम आँचलसे धीरे-धीरे उनकी आँखें पोंछने लगी। बाहर जूतेकी आहट सुनकर हेमने सरपर पल्ला खींच लिया। इतनेमें डाक्टर साहबके साथ गुणेन्द्र घरके सामने आ उपस्थित हुआ। सुलोचनाने देखते ही अकुलाकर कहा—अब डाक्टरको क्यों ले आये गुणी? वहींसे 'विजिट' देकर उन्हें बिदा कर दो, और तुम मेरे पास आकर बैठ जाओ।

गुणेन्द्रने कहा—आये हैं तो कमसे कम एक बार देख ही—

"नहीं बेटा, नहीं, अब मुझे मत जलाओ—जाने दो उन्हें।"

अँगरेज डाक्टरने कुछ समझा नहीं। वह भीतर आकर कुर्सी खींचकर बैठ गया और जेबसे थर्मामीटर निकालने लगा। सुलोचनाने अधीर होकर कहा—इसकी बुद्धि तो देखो! इस जरा-सी नलीसे मेरा बुखार देखेगा! जाओ गुणी, नन्दाको भेज दो, किसी अच्छे वैद्यको बुला लाये जो कब प्राण निकलेंगे, सो मुझे बता जाये। कहला देना, दवा-दारू कुछ न लाये।

सुलोचनासे गैसकी बत्तीका प्रकाश सहा नहीं जाता था, इसलिए इस कमरेमें मोमबत्ती जलाई जाती थी। शाम होते ही नौकरानीने शमादान जलाकर टेबिल-पर रख दिया। सुलोचनाने कहा—आजकी रात ही आखिरी रात है। आज अगर अपने मनकी सच्ची साफ न कह सकी, आज भी अगर लज्जा-संकोच त्याग-कर मुँह और मनको एक न कर सकी, तो भगवान् मुझे और भी सजा दें। पर जो बिलकुल निर्दोष है, उसे तकलीफ कतई न दें। मेरा पाप अपना फल सिर्फ मुझे ही देकर खतम हो जाये।

इसके बाद वह कुछ देर चुप रही, फिर एक लम्बी साँस लेकर 'ओफ्' कर उठी। हेम घबराकर उसके मुँहपर झुक गई, बोली—क्या है माँ?

सुलोचनाने धीमे स्वरमें कहा—कुछ नहीं बेटी। क्या सिर्फ तू अकेली ही है हेम?—गुणीका जो चेहरा मैंने अपनी आँखोंसे देखा है,—पत्थरको भी शायद उसपर दया आ जाती, मगर मुझे नहीं आई,—और उसने हम लोगोंके लिए क्या नहीं किया है?—किन्तु इन बातोंका जिकर अब न करूँगी। कभी किसी भी दिन तू उसकी बात मत टालना बेटी, और न कभी उसे दुःख देना। इस बातको कभी न भूलना बिटिया, कि ऐसे आदमीके मनकी बिथासे स्वयं भगवान्-के जीको दुःख पहुँचता है। जो उनका धर्म है, तेरा धर्म भी वही है। यह मेरा हुकम नहीं है हेम, यह उनका हुकम है, जिनके हुकमसे तुम दोनों एक ही दिनकी मुलाकातसे हमेशाके लिए एक हो गये। छिः बेटी, शरम काहेकी है? जो अन्तर-जामी हैं, जो सबके मनमें छिपे बैठे हुए बात करते हैं, उनके कहनेकी अपेक्षा मत करो,—उनकी अवज्ञा मत करो। उनका हुकम मेरे भीतर भी बोल रहा था, पर अपने घमंडमें मैंने उसे सुना-अनसुना कर दिया। उसे अग्राह्य करके उनकी अवज्ञा की, इसीलिए आज उसका फल पा रही हूँ। पर तुम दोनोंसे मेरी आखिरी

कहन है बेटी, कि मेरे उस अन्यायको, मेरे उस पापको, हमेशाके लिए मंजूर करके, मेरे दुष्कर्मको चिरस्थायी मत बनाये रखना।

मानदाने आकर कहा—माँजी, बैदजी आ गये।

सुलोचनाने धीरेसे कहा—उन्हें ले आ। हेम, तू जरा बाहर चली जा बेटी।

५

माँके मरनेके बादसे ही हेमके रहन-सहनमें आश्चर्यजनक परिवर्तन दिखाई देने लगा। पास रहते हुए भी वह अपनेको दिनों दिन न जाने किस सुदूर अन्त-रालके भीतरकी ओर ढकेलती हुई चलने लगी। गुणेन्द्र हमेशाका सहनशील और खामोश प्रकृतिका आदमी है। इस परिवर्तनको उसने ताड़ तो लिया, परन्तु खामोशीके साथ बरदास्त करता रहा। सहसा हेमको धर्मके अन्दर क्या रस मिलने लगा, सो वही जाने। उसने नाटक, उपन्यास आदि किताबें उठाकर अलग रख दीं, और रामायण, महाभारत, गीता और उपनिषदोंके अनुवादोंमें अपनेको पूरी तरह डुबा दिया। माँकी कसमको याद रखके उसने सफेद धोती तो फिर नहीं पहनी और न कानके जड़ाऊ लटकन, हार, और चूड़ियाँ ही खोलीं, पर वैधव्यकी और सब कठोरताओंका वह श्रद्धाके साथ पालन करने लगी। सब तरहकी ज्यादतियोंको छोड़कर वह सिर्फ एक बार अपने हाथसे बना-कर खाने लगी और घरका आवश्यक काम-काज करनेके बाद जितना समय मिलता, उसे धर्म-चर्चामें ही बिताने लगी। यदि कभी गुणेन्द्रके पास आकर बैठती भी, तो थोड़ी देर रहकर ही किसी कामका बहाना बनाकर चली जाती, मानो वह उसके साथसे डरती हो। यह बात उसके इस तरह यकायक त्रस्त होकर भाग जानेसे इतनी स्पष्ट हो जाती कि गुणी दंग होकर बहुत देरतक शून्य-दृष्टिसे जंगलेके बाहर देखता हुआ स्तब्ध-सा बैठा रह जाता। ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे त्यों-त्यों उसके आचार-विचारके छोटे-मोटे काम भी सुदृढ़ आकार धारण करने लगे। जैसे जेलके अधिकारी जेलके भीतर घेरेपर घेरा डालकर अपने कैदियोंके आयतनको छोटा करते चले जाते हैं, हेम ठीक उसी तरह बड़ी साव-धानीसे मानो अपने हृदयवासी किसी एक गहरे अपराधीके चलने-फिरनेके अव-काशको दिन-रात संकीर्ण करनेमें लग गई।

एक दिन उसने अचानक कहा—गुणी भइया, मैं मंत्र लूँगी।

गुणेन्द्रने उसके मुँहकी ओर देखकर कहा—कैसा मंत्र, गुरुमंत्र?

"हाँ।"

गुणेन्द्रने हँसते हुए कहा—डरनेकी कोई बात नहीं है हेम, तुम्हें आत्मरक्षाके लिए नित्य नये कवच पहननेकी जरूरत न होगी।

शायद हेम इस बातको समझ न सकी। वह कुछ देरतक गुणीके मुँहकी ओर ताकती रही और फिर बोली—गुरु-मन्त्रकी जरूरत नहीं है?

गुणेन्द्रने कहा—है क्यों नहीं,—है, पर उसके लायक अभी तुम्हारी उम्र नहीं है। इसके सिवा तुम लोगोंका गुरु कौन है, सो भी मैं नहीं जानता।

हेमने कहा—उन गुरुओंसे मुझे कोई मतलब नहीं, मैं तो तुमसे दीक्षा लूँगी।

गुणेन्द्रने आश्चर्यके साथ कहा—मुझसे! मैं दीक्षा-ईक्षा क्या जानूँ? और इसके सिवाय तुम हो हिन्दू, मैं ठहरा ब्राह्मसमाजी।

हेमने कहा—सो मैं नहीं जानती। माँने कहा था, जो तुम्हारा धर्म है वही मेरा है। अच्छा गुणी भइया, इसके क्या मानी हुए?

इसके क्या मानी हैं सो गुणेन्द्रको मालूम था। पर उसे न बताकर उसने स्वाभाविक रूपसे ही कहा—शायद उनका अभिप्राय यह रहा हो कि सब धर्म एक ही हैं।

हेमने कहा—मगर सब धर्म तो एक नहीं हैं?

गुणेन्द्रने कुछ देर चुप रहकर कहा—हेम, इन सब बातोंपर मैं दूसरोंसे कभी बहस नहीं करता हूँ।

हेमने कहा—पर मैं तो गैर नहीं हूँ?

गुणेन्द्रने जवाबमें कहा—तुम मेरी बहुत ही अपनी हो,—पर तुम्हारे साथ भी मैं इस विषयमें चर्चा नहीं करूँगा।

हेमने हताश भावसे एक गहरी साँस लेकर कहा—तुम न बतलाओगे, तो फिर मैं कैसे जानूँगी?

गुणेन्द्रने उसका मुखड़ा देखकर अनुतापके साथ कहा—तुम क्या जानना चाहती हो?

हेमने कहा—गुणी भइया, जिस दिन मैंने जबरदस्ती तुम्हारी थालीमें खाया

था उस दिन तुमने मना किया था, और कहा था 'यह काम तुमने अच्छा नहीं किया। जिसकी जो जात है उसे वह मानकर ही चलना चाहिए,' और आज कहते हो कि 'सभी धर्म एक हैं,'—कौन-सी बात सच है ?

गुणेन्द्रने कहा—उस दिन मैंने मामूली तौरपर कह दिया था। फिर भी दोनों बातें सच हैं! जात और धर्म दोनों ही भिन्न-भिन्न चीजें हैं। एक तो सिर्फ देशाचार या लोकाचार है, जो सिर्फ इह-कालकी ही चीज है परन्तु दूसरी इह-काल और पर-काल दोनोंकी ही चीज है। लेकिन इसका यह मतलब हरगिज नहीं कि धर्म मानकर चलनेसे ही जात मानकर चलना हो जाता है और यह भी नहीं कि जात मानकर चलनेसे धर्म मानकर चलना हो जाता है। जात नहीं माननेसे कष्टोंका सामना करना पड़ता है, सब उन कष्टोंको नहीं सह सकते, और, हमेशा इसकी जरूरत भी नहीं होती—इसीसे, तुमसे उस दिन यह बात कही थी। कुछ देर मौन रहकर फिर कहने लगा—हेम, ये दोनों बातें बिलकुल अलग हैं और मिली हुई भी हैं। मिली हुई होनेका मतलब यह है कि देश-भेदके साथ-साथ धर्मके अनेक भेद हो गये हैं। धर्मकी जो मूल बात है, वह पर-कालकी बात है। 'मृत्यु ही हमारा अन्त नहीं है' यही वह मूल बात है। इसी बुनियादपर तुम हिन्दू होकर खड़ी हो; और मैं ब्राह्मसमाजी होकर खड़ा हूँ। सभी धर्म ईश्वरको मानते हों सो बात भी नहीं है। मगर केवल मरनेसे ही छुटकारा नहीं मिल जाता, इस बातको हब्शियोंके देशसे लेकर लापलैंड-देशतकके सभी देशोंके धर्म मानते हैं। मृत्युके बादकी चिन्ता तुम भी करती हो, मैं भी करता हूँ। हो सकता है कि दोनों अलग-अलग ढंगसे सोचते हों, पर चिन्ताकी असल चीज तो वही एक ही है और मरते वक्त माँ इसी भावनासे तुम्हें उपदेश दे गई हैं।

हेम बहुत देरतक चुप रहकर बोली—सिर्फ सोचनेहीसे तो काम नहीं चलता, उसका उपाय भी तो करना चाहिए ?

गुणेन्द्रने कहा—जरूर, क्यों नहीं ? इस उपायकी खोजमें ही तो इतना झगड़ा है, इतना विवाद है। तुम्हारे उपायको मैं पसन्द नहीं करता और मेरा तुम्हें पसन्द नहीं आता। यह अनुमानकी वस्तु है प्रमाणकी नहीं है, यह कह देनेसे भी इसकी बहस खतम नहीं होती। झगड़ा भी तय नहीं होता। हाँ, पर अब तुम्हारा रसोईका समय हो गया हेम।

हेम बिना कुछ कहे धीरेसे उठकर चली गई। गुणेन्द्र शून्य-दृष्टिसे शून्यकी ओर देखता बैठा रहा।

"गुणी भइया!"

गुणेन्द्रने चौंककर मुँह फेरकर कहा—क्या है हेम?

हेमने कहा—अच्छा, मैं जिस मार्गसे चल रही हूँ, वह मार्ग क्या ठीक है?

"मैं कैसे बताऊँ हेम? यह बात तो तुम्हीं जान सकती हो। अगर उसमें आनन्द मिलता हो, शान्ति मिलती हो, तो निश्चय ही वह ठीक है।"

"पर मुझे तो कुछ भी नहीं मिलता।"

उसके व्यथित कंठ-स्वरसे गुणेन्द्रकी आँखोंमें बरबस आँसू उमड़ आये। उसने उन्हें बड़े कष्टसे रोककर आहिस्तेसे कहा—तो फिर करती क्यों हो?

हेमने कहा—क्या जानूँ गुणी-भइया, कोई जैसे मुझे खींचे लिये जाता है,—मानो कोई जबरदस्ती करता है और मैं अपनेको रोक नहीं सकती।

गुणेन्द्र क्या कहे, सहसा कुछ सोच नहीं सका। फिर बोला—सम्भव है, नया-नया है इसलिए कुछ आनन्द न मिलता हो, पीछे जरूर मिलेगा।

हेमने उत्सुक होकर पूछा—मिलेगा?

"जरूर मिलेगा। धर्ममें अगर सुख-शान्ति न मिलेगी तो फिर और किसमें मिलेगी? मैं आशीर्वाद देता हूँ, एक दिन तुम अवश्य सुखी होओगी।"

\+ + + +

दो दिन बाद चाँदनीमें, खुली छतपर सीतलपाटी बिछाकर गुणेन्द्र चुपचाप लेटा हुआ था। हेम आकर उसके पैरोंके पास बैठ गई, बोली—तुम्हारे तलवोंपर हाथ फेर दूँ गुणी भइया?

गुणेन्द्रने 'फेर दो' कहकर आँखें मींच लीं। चाँदनीसे चमकते हुए हेमके चेहरेकी तरफ देखनेका उसने साहस नहीं किया। हेम चुपचाप तलवोंपर हाथ फेरते-फेरते अचानक पूछ उठी—गुणी भइया, विधवाका ब्याह होना क्या अच्छा है?

गुणेन्द्रने आँखें मींचे हुए ही कहा—तुम्हारी क्या राय है?

हेमने कहा—मैं कहने नहीं आई, सुनने आई हूँ।

गुणेन्द्रने कहा—तलवोंपर हाथ फेरना मैं समझता हूँ उसीकी भूमिका है।

हेमने स्वाभाविक स्वरसे कहा—नहीं, सो बात नहीं। तुम्हारे पैरोंके पास बैठते ही मुझे हाथ फेरनेका लोभ हो आता है।

गुणेन्द्र चुप रहा, अपनी जबानपर वह विश्वास न कर सका।

हेमने कहा—हाँ, तो बताया नहीं ?

गुणेन्द्र फिर भी चुप रहा। हेमने तलवेमें हलकी-सी एक चुटकी लेकर कहा—बताओ जल्दी।

गुणेन्द्रने कहा—बताता हूँ; पर पहले मेरी बातका जवाब दो।

"क्या ?"

"अपने पतिको तुम प्यार करती थीं ?"

"जरा भी नहीं। यह बात कभी मेरे मनमें आईतक नहीं। वहाँकी एक पैसेकी चीज भी मैं साथ नहीं लाई। उनका दिया हुआ एक कपड़ा भी पहिनकर नहीं आई। पेटमें जो खाती थी उससे चौगुना दे आई हूँ,—बस, यही उनके साथ मेरा सम्बन्ध था।"

गुणेन्द्रने कहा—मगर जो सती-साध्वी होती हैं, वे अपने पतिसे प्रेम करती हैं। विधवा होनेके बाद भी वे उसका चेहरा याद रखकर दूसरा ब्याह नहीं करतीं। तुम्हारी माँकी तरह वे मरते समय मनमें यह भावना रखती हैं कि अपने पतिके पास जाती हूँ।

हेमने कहा—मुझे तुम लोगोंने जबरदस्ती बाँधकर ब्याह दिया था। मैं भी सती-साध्वी हूँ, क्योंकि मरते समय मैं भी 'तुम्हारे पास जा रही हूँ' यही बात मनमें रखूँगी। अच्छा गुणी भइया, मरकर क्या मैं तुम्हारे पास पहुँच सकती हूँ ?

उसकी बातोंमें जड़ता नहीं थी, लज्जाका लेशमात्र भी न था। मानो किसी औरकी बात कोई और कहता चला जा रहा हो। उस समय की हेमके साथ आजकी हेमका मानो कुछ सम्बन्ध नहीं। गुणेन्द्र दंग रह गया। हेमने कहा—बताओ, तुम्हारे पास पहुँच सकती हूँ या नहीं ?

गुणेन्द्रने कहा—नहीं।

"नहीं, क्यों ?"

गुणेन्द्रने कहा—मेरे कर्मोंका फल मुझे न जाने कहाँ ले जायगा, मैं नहीं जानता; तुम्हारे कर्मोंका फल तुम्हें कहाँ ले जायगा, सो तुम भी नहीं जानतीं।

मैं अपने कर्म-दोषोंसे शायद मरकर पशु होऊँ, और तुम फिर शायद ब्राह्मणके घर लड़की होओ। तब तुम मुझे कहाँसे पा सकती हो ? कर्मफल अगर सच हो, तो पति-पत्नीका चिर-सम्बन्ध किसी भी तरह सच नहीं हो सकता। हमारा यह काल्पनिक सम्बन्ध तो बहुत ही तुच्छ है। इतना भेद, इतनी भिन्नता, इतना ऊँच-नीच तो आँखोंके सामने ही देख रही हो। यह सब सम्भव है, कर्मोंका ही फल हो। इसको प्रेमका कोई भी आकर्षण मिटा नहीं सकता। इस संसारमें कितने ही पाखण्डी पतियोंकी स्त्रियाँ सती-साध्वी होती हैं, उनका पति मरकर बैल हो सकता है,—यह तुम्हारे ही शास्त्रमें लिखा है,—फिर तुम क्या चाहती हो हेम, कि उसकी सती-साध्वी स्त्री अपने सारे जीवनमें अच्छे कर्म करके अन्तमें मरकर उस बैलके साथ गाय बनकर वास करे ? ऐसा नहीं हो सकता। ऐसा होनेपर फिर तो अच्छे और बुरे कर्मोंमें भेद ही नहीं रह जायगा। स्त्री अपने भले कामोंसे स्वर्ग जाती है और पति, हो सकता है कि जन्म-जन्मान्तरतक नरकहीमें पड़ा रहे। हजार इच्छा करनेपर भी क्या एक होनेका कोई उपाय हो सकता है हेम ?

हेम बहुत देरतक चुपचाप विचारती रही, फिर धीरे-धीरे बोली—तो फिर सचमुच ही और कोई मिलनेका रास्ता नहीं है ?

गुणेन्द्रने कहा—नहीं। उसकी फिर कोई जरूरत भी नहीं है। इससे तो यही अच्छा है कि तुम उस मिलनकी कामना करो जो सबसे बड़ा है और जिसके पास पहुँचनेके बाद और किसीके पास जानेकी इच्छा नहीं होती,—अर्थात् जिससे सब तरहके मिलनेकी इच्छा अपने आपमें ही पूरी सार्थक हो जाती है। तुम्हारे इस मार्गसे कोई भी तुम्हें च्युत न कर सके, हमारा दिया हुआ सारा दुःख एक दिन तुम्हारे लिए सार्थक हो, यही मेरा मानसिक और कायिक आशीर्वाद है।

चन्द्रमाके प्रकाशमें हेम देख सकी कि गुणेन्द्रकी आँखोंसे टप-टप आँसू झर रहे हैं। वह पैरोंपर सिर रखकर प्रणाम कर और फिर धीरे-धीरे उठकर चली गई। आज उसे धिक्कारके साथ सिर्फ यही अनुभव होने लगा कि मानो चिर दिनोंका सुअवसर उसकी आँखोंके सामनेसे बह गया है, हाथ बढ़ाकर वह उसे पकड़ भी न सका। हेम उसे कितना प्यार करती है, इस बातको वह गहरे विश्वासके साथ जानता था। आज उसके मुँहसे साफ सुनकर भी वह किसी भी तरह अपने मनकी बातको न कह सका। सुलोचनाके मरनेके बादसे वह 'अब कहता हूँ, अब कहता

हूँ', सोचता रहा, पर कह नहीं सका। उसे प्रायः ऐसा मालूम होता था कि मानो उसके पास कोई काली नागिनी सो रही है जो हाथ बढ़ाकर छूते ही फन उठाकर खड़ी हो जायगी। इसीसे जो डर अभीतक बराबर उसके हाथ थामे हुए था आजके ऐसे मौकेपर भी मानो उसी डरने उसके हाथ बढ़ने नहीं दिये।

रोज सबेरे नहानेके बाद हेम उसे प्रणाम करने आया करती थी। दूसरे दिन आते ही गुणेन्द्रने जी-जानसे संकोचको दूर हटाकर उससे पूछा—हेम, कल तुमने विधवा-विवाहकी बात क्यों पूछी थी?

हेमने कहा—एक अखबारमें पढ़ी थी?

गुणेन्द्रने कहा—तुम क्या उसे अच्छा समझती हो?

हेमने संक्षेपमें कहा—राम राम, वह भी कोई ब्याह है!

गुणेन्द्रने पूछा—क्यों नहीं? हिन्दुओंको छोड़कर संसारकी और सभी जातियोंमें विधवा-विवाह होता है!

"हो, इससे क्या!" कहती हुई हेम उठकर जाने लगी; गुणेन्द्र ने उसे बुलाकर कहा—और एक बात कहनी है, हेम।

हेम मुँड़कर खड़ी हो गई और बोली—क्या?

"तुम्हारी उम्र कितनी है?"

"सोलह।"

"इतनी-सी उम्रमें क्या हमेशा संन्यासिनी बनी रहोगी?"

हेमने मृदु मुस्कराकर कहा—तो और क्या करूँगी? जैसी मेरी तकदीर और जैसी तुम्हारी बुद्धि!

गुणेन्द्र कुछ देरतक हेमके चेहरेकी ओर देखता रहा, फिर बोला—और क्या कोई रास्ता नहीं है?

"नहीं गुणी भइया, कोई रास्ता नहीं।" इतना कहकर हेम चली गई।

दिनपर दिन, ज्यों-ज्यों परिपूर्ण यौवन हेमकी देहके कोने-कोनेमें भरकर उद्वेलित होने लगा, त्यों-त्यों उसका धर्म-कर्म भी मानो उस सबको अतिक्रम करके आगे बढ़ने लगा। गुणेन्द्रने सब कुछ देखा, पर वह साहस करके मुँहसे कुछ कह नहीं सका। हेमके अंदर मानो एक ऐसा यंत्र था जिसके कारण सभी कोई भीतर ही भीतर उससे डरा करते थे। उसकी माँ भी उससे डरती थी और

गुणी भी डरता था। इसके कई दिन बाद, एक दिन गुणेन्द्र कचहरी जानेकी तैयारी कर रहा था, इतनेमें ही हेम आ गई। आलमारी खोलकर और चेक-बही निकालकर वह इसे गुणेन्द्रके हाथमें देती हुई बोली—लौटते वक्त बैङ्कसे पाँच-सौ रुपये लेते आना।

गुणेन्द्रने 'अच्छा' कहकर चेक-बही जेबमें रख ली।

हेमने कहा—ठहरो, घर-खर्चके लिए भी रुपये नहीं रहे, दो-सौ और निकालते आना।

गुणेन्द्रने आश्चर्यके साथ पूछा—फिर वे पाँच-सौ किस बातके लिए?

हेमने कहा—वे रुपये? कल मुझे काशी जो जाना है।

गुणेन्द्र कुर्सीपर बैठ गया, बोला—कल काशी जाओगी? इस बारेमें किसीकी राय लेना भी तुमने जरूरी नहीं समझा?

हेम अप्रतिभ होकर बोली—तुम्हारी आज्ञा ले लूँगी तब जाऊँगी।

गुणेन्द्रने कहा—तय कर चुकी हो, कल जाओगी, फिर आज्ञा कब लोगी? साथ कौन जायगा?

हेमने कहा—मानदा और दरबान जायँगे। आज रातको ही तुमसे कहना चाहती थी। कल चली जाऊँ मैं गुणी भइया?

"अच्छा चली जाना।" कहकर गुणेन्द्र कचहरी चला गया।

शामके बाद हेम नोट और रुपये आलमारीमें बन्द करके गुणेन्द्रके पास आई और बोली—कल जाना नहीं होगा।

"क्यों?"

"आज दोपहरको महाराजके घरसे तार आया था कि उसकी माँ बीमार है। मैंने उसे तीन महीनेकी तनखा देकर छुट्टी दे दी है। वह चला गया है!"

"रसोई कौन बनायेगा?"

"जबतक दूसरा कोई रसोइया न मिले तबतक मैं ही बनाऊँगी। गुणी भइया, अब तुम ब्याह कर लो।"

"क्यों?"

"क्यों? ब्याह नहीं करोगे तो घर कौन सम्हालेगा? तुम्हारी देख-भाल कौन करेगा?"

"तुम।"

हेम हँसकर बोली—मैं क्या चिरकालतक इस घर-बारको अपने सिर उठाये रहूँगी ? मुझे क्या और कोई कार्य नहीं करना है ?

"मेरी देख-भाल करना क्या कोई कार्य नहीं है ?"

हेमने हँसते हुए कहा—मैं तुम्हारे साथ बहस नहीं कर सकती। नहीं नहीं, ऐसा हरगिज नहीं होगा। तुम्हारे समाजमें बड़ी-बड़ी लड़कियाँ मिलती हैं, देख-भालकर किसीसे ब्याह कर लो, मैं उसे ही घर सौंपकर काशी जाऊँगी।

गुणेन्द्रने कहा—अच्छी बात है, तुम भी एक ब्याह करो, मैं भी करता हूँ।

अभी-अभीतक हेम हँस रही थी, एक ही क्षणमें उसकी सब हँसी मानो हवा हो गई ! वह गम्भीर होकर बोली—राम राम, यह कैसा मजाक करते हो गुणी भइया ? फिर कभी ऐसी बात जबानपर न लाना।

गुणेन्द्रसे आगे कुछ न कहा गया, वह सन्न होकर उसके चेहरेकी तरफ देखता रह गया। हेम उठकर चली गई।

६

हेम दो महीने काशी रही, उसके बाद गुणेन्द्रकी बीमारीकी खबर पाकर फिर कलकत्ते आ गई। अगर न आई होती तो शायद बीमारी कठिन हो जाती। उसने आकर खूब सेवा-टहल करके कुछ ही दिनोंमें गुणेन्द्रको स्वस्थ कर दिया।

बाहर मूसलधार वर्षा हो रही थी। गुणेन्द्र अपनी खाटपर बैठा सामनेकी काँचकी खिड़कीसे उसे देख रहा था, और हेमके बारेमें सोच रहा था। एक परिवर्तन उसने देखा। हेम पहले रोज आकर सबेरे गुणेन्द्र को प्रणाम करती थी, पर इस बार वह नहीं आई। मानदाके मारफत उसने हेमको बुलवाया तो उसने आकर कहा—जीजी जप कर रही हैं।

करीब दो घंटे बाद हेमने कमरेमें आकर कहा—मुझे बुला रहे थे ?

गुणेन्द्रने कहा—हाँ, जरा बैठ जाओ।

हेमने कहा—पर अभी तो मेरा जप पूरा नहीं हुआ।

"दो घंटेमें भी जप पूरा नहीं हुआ ?"

"दो घंटेमें क्या होगा ? गुरुजीने कहा है, कमसे कम दो हजार जप करने

चाहिए।"

"गुरुने कहा है। कौन गुरु?"

हेमने कहा—मैंने जिनसे अबकी बार काशी जाकर गुरु-मंत्र लिया है। गुरु काशीवासी संन्यासी हैं। अहा, उन्हें देखकर फिर संसारके झंझटोंमें आनेकी इच्छा नहीं होती। अब न जाने कब फिर उनके दर्शन होंगे, यही सोचा करती हूँ। सोचती हूँ, कल ही परसों काशी लौट जाऊँ।

गुणेन्द्र कुछ देर चुप रहकर बोला—कल-परसों कैसे चली जाओगी? अभी तो मैं पूरी तरह अच्छा भी नहीं हुआ हूँ हेम, मुझे कौन देखेगा-भालेगा?

हेमने अप्रतिभ होकर कहा—यह कुछ नहीं, दो चार दिनमें ही तुम बिलकुल ठीक हो जाओगे।

"कमसे कम उन दो-चार दिनोंतक तो तुम रहोगी?"

"अच्छी बात है, रह जाऊँगी।" कहकर हेम जाने लगी तो गुणेन्द्रने फिर पास बुलाकर कहा—सुनो, कल-परसों ही चली जाना, पर फिर लौटकर आओगी कबतक?

"अब शायद जल्दी नहीं आ सकूँगी। तुम मुझे महीनेमें सौ रुपया भेज दिया करना। उससे मेरा काम चल जायगा, कममें नहीं।"

गुणेन्द्रने कहा—रुपयेकी बात नहीं है हेम। तुम्हें सौकी जगह दो सौकी जरूरत होगी, तो भी मैं भेजूँगा। पर क्या सचमुच तुम अब लौटकर नहीं आओगी?

"किसलिए आऊँ अब?"

"अगर मेरे मरनेकी खबर पाओगी, तो आओगी?"

हेमने व्यथित होकर कहा—ऐसा क्यों कह रहे हो गुणी भइया?

गुणेन्द्रने कहा—कौन कह सकता है हेम, कब किसका अन्त हो जाय? इसलिए ऐसा समय आनेके पहले ही बता देना ठीक है। मेरी वसीयतमें तुम्हारे लिए रुपये देनेकी व्यवस्था रहेगी। और यह मकान भी तुम्हारे लिए ही होगा। अगर तुम कभी यहाँ आओ तो इसी मकानमें, इसी कमरेमें सोना, बस, इतना ही मेरा तुमसे अनुरोध है।

हेम कोई बात कहना चाहती थी, पर उसे मनहीमें पीकर बोली—मैं कहती

हूँ गुणी भइया, तुम्हें इस बातका डर नहीं है। अभी तुममें जरा कमजोरी है, इसीलिए ये सब बातें सूझ रही हैं।

"शायद यही होगा"—कहकर गुणेन्द्र बाहरकी वर्षाकी ओर देखने लगा। हेम विषादसे भरे चेहरेको लेकर बाहर चली गई।

शाम हो जानेके कुछ देर बाद दरवाजेसे गुणेन्द्रके कमरेमें अँधेरा देखकर हेमने गुस्से होकर जोरसे पुकारा—नन्दा, बाबूके कमरेमें बत्ती क्यों नहीं जलाई?

गुणेन्द्रने भीतरसे कहा—मैंने मना कर दिया था।

नन्दा दौड़ा आया। उससे शमादान जला लानेके लिए कहकर हेम अँधेरे घरमें प्रविष्ट हुई और अन्दाजसे गुणेन्द्रके पायँते खाटपर जाकर बैठ गई। नन्दा शमादान जलाकर टेबिलपर रख गया। हेमने गुणेन्द्रके पैरोंपर हाथ रखे ही थे कि उसने पैर हटा लिये। हेमने व्यथित होकर पूछा—तुम अब मुझे पैर नहीं छूने दोगे?

गुणेन्द्रने कहा—जरूरत क्या है हेम, तुम्हारे गुरुकी शायद मनाई हो।

हेम समझ गई कि अबकी काशीसे आनेके बाद उसने पैर नहीं छुए, इसीको लक्ष्य करके गुणी ऐसा कह रहा है। मगर वह कोई जवाब नहीं दे सकी, चुप बैठी रही। कुछ देर बाद बोली—गुणी भइया, तुम मुझसे नाराज हो गये हो?

"मैं क्या किसी दिन तुमसे नाराज हुआ हूँ?"

हेम तत्क्षण अनुतप्त हो उठी, बोली—और कभी तो नहीं हुए,—लेकिन आज ये सब बातें क्यों कह रहे थे?

"कौन-सी बातें?"

"वसीयतकी बात, और भी कितनी ही बातें,—मैं कहती हूँ गुणी भइया, तुम अच्छे हो जाओगे। घबराओ मत।"

गुणेन्द्रने जरा मुस्कराते हुए कहा—अच्छा न होऊँगा, क्या मैं इसीलिए इतना घबराता हूँ? तुम क्या यही समझती हो?

हेम रुआँसी होकर बोली—तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ गुणी भइया, तुम ये सब बातें न कहो। तुम यदि अच्छे न होगे, तो मैं कैसे जीऊँगी?

"और तुम्हारे चले जानेपर मैं कैसे जीऊँगा? इसलिए, अगर मैं तुम्हें पकड़

रखूँ, जाने न दूँ?"

हेम कुछ देर चुप रहकर बोली–मुझे रोक रखनेसे तुम्हें फायदा क्या होगा?

'फायदा।'—आगे गुणीसे और कुछ न कहा गया, वह निस्तब्ध हो रहा। बाहर वर्षाकी बड़ी-बड़ी बूँदें खिड़कीपर पड़ रही थीं। यकायक जोरकी हवा आई और उसने झटकेसे खुली हुई खिड़कीमेंसे आकर शय्याके पासका शमादान बुझा देनेकी तैयारी की। नीचे नौकरोंका अस्पष्ट शोर-गुल सुनाई देने लगा, फिर भी दोनों चुपचाप बैठे रहे। गुणेन्द्र बचपनसे ही अत्यन्त आत्माभिमानी और संयमी था। अपने धैर्यका बाँध उसने खूब मजबूतीसे बनाया था, परन्तु सुलोचनाके अन्तिम आशीर्वचन उसी दिनसे उस बाँधकी नीवमें चूहेकी तरह घुसकर बराबर बिल खोदते आ रहे थे और उनमें नदीका पानी घुस-घुसकर लम्बे-लम्बे दरार बनाता चला जा रहा था; कब किस समय यह सब साराका सारा ढह जायगा, इसका कोई ठीक नहीं था। उन्मत्त बाह्य प्रकृतिकी ओर देखकर एक बार उसने शुरूसे लेकर अन्ततक सारी बातोंपर दृष्टिपात करना चाहा, परन्तु उसके रुग्ण शरीर और कमजोर दिमागने उसे कोई भी बात परिष्कृत रूपमें न समझने दी।

हेम सहसा बोल उठी—गुणी भइया, चुप क्यों हो गये, क्या सोच रहे हो?

"कुछ नहीं, कुछ नहीं, वह बात तुमसे कहनेकी नहीं है,—तुम समझ नहीं सकोगी। पर, अगर किसी दिन तुम्हारी मति बदले, और तबतक भी मैं अगर जीता रहूँ, तो—!"

हेम जरा सरककर बैठ गई, बोली—मैं सब समझती हूं। हाय री तकदीर, जो रक्षक है, वही भक्षक बनता है! अन्तमें तुम्हीं मुझे दुर्गतिकी ओर खींच ले जाना चाहते हो।

गुणेन्द्र अबतक एक मोटे तकियेके सहारे बैठा था, उसकी आँखें जल उठीं, सीधा होकर बैठ गया, बोला—छिः, हेम, समझकर बात कहो! यह तुम क्या कह रही हो?

हेम बिजलीकी तरह उठ खड़ी हुई, बोली—समझकर ही कह रही हूँ! तुम जो कुछ घुमा-फिराकर कहना चाहते हो, वही मैं साफ तुम्हारे मुँहके सामने ही कहती हूँ—तुम मुझे नष्ट करना चाहते हो! विधवाका ब्याह कैसा गुणी भइया?

मैं इतनी नादान नहीं हूँ जो धर्मको जानकर भी अधर्मकी ओर पैर बढ़ाऊँ। मैं तुम्हारे रुपये नहीं चाहती, तुम्हारा आश्रय नहीं चाहती, कुछ नहीं चाहिए मुझे तुम्हारा, मैं अपनी ससुरालके घर लौटकर आँगन बुहारकर पेट भर लूँगी, वह भी मेरे लिए अच्छा है; पर तुम्हारे इस ऐश्वर्यकी मुझे जरूरत नहीं है। मेरी ऐसी कुमति न हो। उस दिन तुम्हारी बुद्धि कहाँ गई थी? उस दिन इसी तरह क्यों नहीं कह सके?

गुणेन्द्र उसी तरह स्थिर बैठा रहा, बोला—हेम मुझसे कसूर हुआ, मुझे माफ करो। मैं पीड़ित हूँ,—इस बातको भी तो एक बार सोचो।

"सोच लिया। माफ तो, आज नहीं दो दिन बाद करूँगी ही, पर अब तुम्हारे साथ सम्बन्ध नहीं रख सकूँगी। कल मैं वहीं लौट जाऊँगी, जहाँसे दर्पके साथ यहाँ चली आई थी और जैसे बनेगा, वहीं पड़ी रहूँगी। सोचूँगी, वही मेरी काशी है, वही मेरा वैकुण्ठ है। तुम भी मुझे माफ करो गुणी भइया,—मैं जाती हूँ।

हेम चली गई, गुणेन्द्र वैसा ही सीधा बैठा रहा,—जैसे बिजलीका मारा ताड़वृक्ष। उसी तरह जिस तरह भीतरसे जला हुआ कबन्ध खड़ा रहता है। उसमें पड़े रहनेकी शक्ति भी मानों नहीं रही।

७

फिर दुर्गा-पूजा आई। खूब सवेरे उठकर जंगलके पास चुपचाप खड़ी हुई हेम पूर्वकी अरुण-रक्तच्छटाकी ओर देख रही थी। मुहल्लेहीमें कहीं नौबत बज रही थी। उसका राग शरत्की सम्पूर्ण करुणाके साथ मिलकर उसके सारे शरीरमें धीरे-धीरे संचारित हो रहा था। अज्ञात दशामें उसकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। कितने दिन हो गये, उसे गुणेन्द्रकी कोई खबर नहीं मिली। वह मन ही मन सोचने लगी—कौन जाने मेरे गुणी भइया कहाँ होंगे, कैसे होंगे। कलकत्तेसे आते वक्त गुणेन्द्रने रोते हुए कहा था, 'हेम, और दो दिन रह जाओ, नाराज होकर मत जाओ।' अभिमानीके आँसुओंकी कीमत तब तो उसने कुछ नहीं समझी। उस दिन बीमारीकी हालतमें, इतनी कमजोरी होनेपर भी, गुणेन्द्र नीचे सड़क-तक उतर आया था, और बोला था, 'हेम, तुम्हारा मन अभी स्वाभाविक अवस्था-

में नहीं है। किसी भी कारणसे हो, विकृत हो गया है,—इसलिए मेरा कहना है कि लौटकर कमसे कम एक दिनके लिए और रह जाओ।' मगर हेमने एक न सुनी; गाड़ीपर जा बैठी। गुणेन्द्रने गाड़ीकी खिड़कीके पास आकर आखिरी विनतीतक की थी, 'हेम, सम्भव है कि तुम्हारा यह व्यवहार हमेशाके लिए तुम्हारे ही मनमें काँटेकी तरह चुभता रहे,—मैं अपने लिए नहीं कह रहा हेम, तुम्हारे खुदके ही लिए कह रहा हूँ, आजभरके लिए गाड़ीसे उतर आओ।' इसके उत्तरमें हेमने कोचवानसे गाड़ी हाँकनेके लिए कह दिया था। सोचते-सोचते हेम लौटकर अपने बिस्तरपर जाकर पड़ रही, और बहुत देरतक रोते-रोते उसने अपने सारे बाल भिगो लिए। अन्तमें उसे नींद आ गई। इतना दुःख करनेकी एक वजह भी हो गई थी। तीर्थ जानेके लिए कल उसने नौकरानी भेजकर मुनीम-से पचास रुपये मँगवाये। मुनीमने उसे यह कहकर वापस कर दिया कि 'बिना छोटे बाबूके हुक्मके मैं रुपये नहीं दे सकता।' हेम अपने देवरके साथ बोलती न थी, उसने किवाड़की ओटमें खड़े होकर कहा—'लालाजी, मेरे मँगानेपर क्या मुनीमजी पचास रुपये भी मुझे नहीं दे सकते थे?'

देवरने जवाब दिया—नहीं; आपको सिर्फ खाने-पहननेका हक है,—रुपये नहीं पा सकतीं।

हेमने कहा—क्या हक है और क्या नहीं, यह मैं जानती हूँ लालाजी! तुम्हारे साथ रुपये-पैसेके लिए मामला-मुकदमा करनेकी मुझमें जरा भी प्रवृत्ति नहीं है। मगर मुझे तुम इतना बेबस मत समझो। तुम देना चाहो दे दो, नहीं तो कहे देती हूँ तुमसे, रुपयोंका ही अगर कोई जोर हो, तो दुश्मनी करके मैं तुम्हारे घरकी एक-एक ईंट उखड़वाकर गंगाजीमें बहवा दूँगी।

इसके कुछ देर बाद ही रुपये आ पहुँचे, पर हेमने लिये नहीं, मारे गुस्सेके आँगनमें फेंक दिये और घरमें आकर किवाड़ देकर वह पड़ रही। तमाम दिन कुछ खाया-पीया नहीं, उठीतक नहीं; भीतर ही भीतर किसीको याद कर-करके रोने लगी। सवेरे जब कि सात बज गये, तब हेमकी नींद खुली। नहा-धोकर सन्ध्या करने बैठी ही थी कि इतनेमें नौकरानीने आकर खबर दी—'बहूजी, तुम्हारे भाईके यहाँसे चार-पाँच जने सौगात लेकर आये हैं—' वह बात खतम भी न कर पाई थी कि मानदाने आकर प्रणाम किया। मानदाका मुँह देखते ही

वह सब दुःख भूल गई और गलेसे लगकर बच्चोंकी तरह रोने लगी। कलसे ही उसकी आँखोंके आँसू सूख नहीं रहे थे, आज सहसा मानदाको पाकर उसके करीब साल-भरसे रुके हुए आँसुओंने बाढ़की तरह निकलकर मानो सब कुछ बहा दिया। मानदाको अपने कमरेमें खींच ले जाकर उसने कहा,—गुणी भइयाने क्या चिट्ठी लिख दी है, मुझे दे।

मानदाने कहा—चिट्ठी तो उन्होंने नहीं दी।

हेमको मानो विश्वास नहीं हुआ, बोली—नहीं दी?

मानदाने कहा—नहीं जीजी, उनसे क्या उठा-बैठा जाता है जो चिट्ठी लिखते?

हेमका चेहरा फक पड़ गया। अपनेको सम्हालते हुए बड़ी मुश्किलसे उसने पूछा—उठ-बैठ नहीं सकते, क्या हो गया है उनको?

"तुमको क्या कुछ मालूम ही नहीं?"

"नहीं तो, तू बता।"

"क्या बताऊँ जीजी!" कहकर मानदा रोने लगी। हेमने रूखे स्वरमें कहा, "रोना पीछे, पहले बता तो।"

उसने रोते हुए कहा—क्या बताऊँ जीजी, तुम्हारे चले आनेके दूसरे दिनसे ही फिर ज्वर आने लगा, अच्छे हो गये, और फिर बुखार आने लगा; फिर अच्छे हो जाते हैं फिर बुखार आ जाता है—वापस जाकर देख भी सकूँगी या नहीं, इसका भी भरोसा नहीं है।

हेमने कहा—और क्या हाल है?

मानदा कहने लगी—हालकी मत पूछो जीजी, बीमारीकी खबर पाकर बर्द्ध-मानसे या न जाने कहाँसे कोई मौसी आई, फिर मौसा आये, उसके बाद मौसेरे भाई, बहू, बहन, बहनोई, सब आ धमके, कोई बाकी नहीं रहा। घरमें अब जगह भी नहीं रही है?

"मैं सबको विदा कर दूँगी,—हाँ फिर?"

"सब खा रहे हैं, पी रहे हैं, मौज कर रहे हैं। बाबू ऊपर पड़े रहते हैं, न कोई डाक्टर आता है न वैद्य, न दवा-दारू न पथ्य-पानी। सुना है, हवा बद-लनेसे लाभ होगा, पर ले कौन जाय?"

हेमने कहा—तुम सबके सब क्या कर रहे थे ? नन्दा क्यों नहीं ले गया ?

मानदाने तकदीरपर हाथ दे मारा, कहा—बाबूका वही सबसे पुराना नौकर था, परन्तु मौसाजीके लड़के अभयने उसे भी मार-पीटकर भगा दिया। छोकरा शराब भी पीता है,—किसी-किसी दिन घर आकर ऐसा ऊधम मचाता है कि भयसे कोई बाहर नहीं निकल सकता। उससे बाबूतक डरते हैं।

हेमने कुछ देर चुप रहकर कहा—एक बात सच-सच बताना बहन, मेरे गुणी भइया क्या बचेंगे नहीं !

मानदाने कहा—क्यों नहीं बचेंगे जीजी ? चलकर दिखाओ-भलाओ,कोशिश करो, जरूर अच्छे हो जायँगे। वैसे यों डाल रखनेसे और कितने दिन जीयेंगे ?

हेम मिनट-भरके लिए आखें बन्द कर बैठी रही, उसके बाद उठ खड़ी हो बोली—मानदा, तुम्हारे पास वापस जानेके लिए रुपये हैं ?

"हैं, हैं क्यों नहीं। तुम तो जानती ही हो जीजी, बाबू एककी जरूरत हो तो दस देकर भेजते हैं। रुपये मेरे ही पास हैं।" यह कहकर उसने आँचलमें बँधे हुए नोट दिखाये।

हेमने पूछा—कब जाओगी ? कल ?

मानदाने कहा—हाँ जीजी, कल ही जाना होगा। उनके पास मैं ही तो एक पुरानी दासी हूँ, और तो सब नये हैं, कोई टिक थोड़े ही पाता है। जैसी मौसी वैसा ही उनका लड़का, और वैसे ही उनकी बेटी-बहू। विधाताने मानो खास तौरसे फरमायश देकर उन्हें एक ही साँचेमें ढलवाया है। मेरे तो बड़े कड़े प्राण हैं, इसीसे अबतक टिकी हुई हूँ—छोकरा अभय एक दिन मुझे भी मारने आया था।—बाबूके लिए कहता है कि मर जायँ तो आफत टले !

हेमकी आँखोंसे चिनगारियाँ-सी निकलने लगीं; बोली—मुझे पहुँचने तो दे। आज स्टीमर कब छूटता है मालूम है तुझे ?

मानदाने कहा—घंटे-भर बाद ही छूटेगा, मैं आते वक्त पूछती आई हूँ।

"तो चल, इसीसे चलूँगी। तू गाड़ी बुला ला।"

"तुम आज ही चलोगी जीजी ? आज तो दिन अच्छा नहीं है।"

"अच्छा दिन है,—देरी मत कर, गाड़ी बुला ला।"

* * *

उसी दिन शामको अभयको थाली परोसकर माँ पास बैठी हुई उससे और भी दो पूड़ी खा लेनेका अनुरोध कर रही थी। बगलमें ही ऊपर जानेकी सीढ़ी थी। अपरिचित हेमको देखते ही आश्चर्यमें आकर मौसीने प्रश्न किया—कौन हो तुम बेटी?

"मैं परदेशी हूँ"—कहकर हेम सीधी ऊपर चली गई। अभय उसके अपूर्व रूपकी ओर भेड़ियेकी तरह घूरता रह गया।

हेमने गुणेन्द्रके कमरेमें जाकर देखा—वह दीवारकी तरफ मुँह किये लेटा हुआ है। जाग रहा है, या सो रहा है, कुछ समझ न सकी। सिरहानेके पास चाबियोंका गुच्छा पड़ा था, हेमने सबसे पहले उसे उठाकर अपने आँचलमें बाँध लिया। टेबिलपर दो-तीन रीती दवाओंकी शीशियाँ पड़ी थीं, उठाकर देखीं—लेबिलपर पन्द्रह दिन पहलेकी तारीख पड़ी है! साफ-साफ सब बातें समझमें आ गईं। इसके बाद लोहेका सन्दूक खोलकर चेक-बही निकालके जब वह व्यवहृत अंशोंकी दस्तखत मिलाकर परीक्षा कर रही थी तब मौसी आ पहुँचीं, देखते ही दंग हो गईं। चिल्लाकर बोलीं—कौन हो तुम, जो सन्दूक खोल रही हो?

हेमने कहा—चिल्लाती क्यों हो? उनकी नींद खुल जायगी।

मौसीने और भी चिल्लाकर कहा—हाँ, चिल्लाती क्यों हो!

गुणेन्द्र जाग रहा था, उसने करवट बदली। हेमने कहा—मैं नहीं खोलूँगी तो और कौन खोलेगा? तुम?

गुणेन्द्र देख रहा था, दोनोंमेंसे किसीने उधर ध्यान नहीं दिया। मौसी आपेसे बाहर हो गईं। गुणेन्द्रने धीरेसे कहा—हेम, कब आई तुम?

"अभी आ रही हूँ। इन्हें समझा दो कि तुम्हारी तिजोरी खोलनेके कारण किसी बाहरी आदमीको कमरेमें आकर शोर-गुल न करना चाहिए। यह सब-कुछ मेरा है, इस बातको अच्छी तरह समझाकर इन्हें यहाँसे जानेके लिए कह दो।"

गुणेन्द्र सब समझ गया। उसके बाद हँसकर बोला—जान पड़ता है उसी नातेसे इतने दिनों बाद सन्दूक खोलने आई हो?

हेमने चेकके पन्ने गिनते हुए कहा—हाँ।

मौसीने कहा—यह कौन है गुणी?

"मेरी बहन।"

जवाब सुनकर हेम सिहर उठी। उसके बाद आँख उठाकर उसने एक बार गुणेन्द्रके मुँहकी तरफ देखा, फिर सिर नीचा कर लिया।

मौसीने कहा—कैसे, अबतक तो मैंने नहीं सुना था! कैसी बहन है?

गुणेन्द्रने इस बातका संक्षेपमें जवाब दिया—नाराज होकर चली गई थीं, सब कुछ उसीका है मौसी।

मौसीने विश्वास नहीं किया और उनकी समझमें भी कुछ नहीं आया। वे चुपचाप नीचे चली गईं। उनके चले जानेपर गुणेन्द्रने हेमकी ओर अच्छी तरह बिना देखे ही कहा—मरते वक्त अचानक यह ख्याल कैसे मनमें आ गया? पर यह कहनेके बाद ही उसका चेहरा देखकर वह डर गया। हेमका चेहरा फक पड़ गया था, मानो वह अकस्मात् किसी क्रुद्ध तपस्वीके अभिशापसे एक क्षणमें ही पाषाण बन गई थी!

गुणेन्द्रने डरते-डरते बुलाया—हेम!

हेमने कोई जवाब नहीं दिया, हिली-डुली भी नहीं—एकटक जमीनकी तरफ देखती हुई बैठी रही।

गुणेन्द्रने अत्यन्त व्याकुल होकर बुलाया—हेम, बात सुनो।

हेमने उसके उत्तरमें एक गहरी साँस ले ली और स्थिर हो ज्योंकी त्यों बैठी रही। गुणेन्द्र खाटपर किसी तरह उठकर बैठ गया, उसके बाद खाटसे उतरकर धीरे-धीरे बड़ी मुश्किलसे हेमके सामने आकर खड़ा हो गया। उसका सामने आना था कि हेम आँधी होकर उसके पैरोंपर गिर पड़ी और पैरोंमें अपना मुँह छिपाकर रोने लगी—बिना क़ुसूरके मुझे सब कोई सजा देते हैं।—परन्तु तुम भी दोगे, ऐसा मैंने स्वप्नमें भी न सोचा था।

गुणेन्द्र चुप रहा। सावनके आकाश-भरे बादलोंकी तरह काले बालोंने उसके पैर ढक रखे थे। उसकी तरफ देखता हुआ वह कुछ देरतक यों ही चुपचाप खड़ा रहा। उसके बाद आहिस्तेसे बैठ गया और हेमके माथेपर दाहिना हाथ रखकर शान्त स्वरसे कहने लगा—तुम्हें सजा क्या दूँगा हेम! मुझे तुमने प्यार किया था, इसलिए मैं अपनेको भी सजा नहीं दे सका। यह सजा नहीं है बहन, चार वर्षके घोर दुःखके बाद मरनेसे पहले मुझे शान्ति मिली है और अन्त समय

मैं उस दुर्लभ वस्तुको तुम्हें दे जाऊँगा—चलो, हम काशी चलें।

हेम मुँह छिपाकर रोती रही और बोली—चलो, पर क्या यही तुम्हारी अन्तिम आज्ञा है? इसे मैं सह सकूँगी?

गुणेन्द्रने कहा—जरूर सह सकोगी। जब तुम यह समझोगी कि प्रेमको महामहिमान्वित करनेके लिए विच्छेदने सिर्फ तुम जैसी अतुल ऐश्वर्यशालिनीके द्वारपर ही आकर हमेशा हाथ पसारे हैं, वह अल्प-प्राण क्षुद्र प्रेमकी झोंपड़ीमें अवज्ञासे नहीं गया है, तब तुम सह सकोगी। जब समझोगी कि अमृत वासना ही महत् प्रेमकी प्राण है, इसीके द्वारा ही वह अमरत्व प्राप्त करके युग-युगमें कितने काव्य, कितनी मिठास, कितने अमूल्य आँसू संचित करके रख जाता है; जब इस बातको तुम निःसंशय अनुभव कर सकोगी कि क्यों राधाका शत-वर्षव्यापी विरह वैष्णवोंका प्राण है, क्यों वह प्रेम मिलनेके अभावमें ही सुसम्पूर्ण और व्यथामें ही मधुर है, तब तुम सह सकोगी हेम! उठकर बैठो,—चलो, आज ही हम काशी चलें। जो थोड़ेसे दिन और बाकी हैं उन दिनोंकी अन्तिम सेवा तुम्हारे भगवान्‌के आशीर्वादसे अक्षय होकर तुम्हें जीवन-भर सुमार्गमें शान्तिसे रखेगी!

———

काशीनाथ

१

रातके चार ही बजेसे उठकर, नहा-धोकर, पूजा-पाठ करके, ऊँची चोटी बाँधकर, काशीनाथ जब पण्डित धनंजय भट्टाचार्यकी पाठशालाके बरंडेमें बैठकर गुनगुनाता हुआ दर्शन-शास्त्रके सूत्र और भाष्य रटने लगता, तब उसे बाहरी दुनियाका बिलकुल ही होश न रहता। प्रशस्त ललाट और दीर्घाकृति काशीनाथ वन्द्योपाध्याय दर्शन-शास्त्रके गहन-वनमें प्रवेश करनेके बाद बिलकुल दिग्भ्रान्त हो जाता। इस दशामें देखकर लोग उसके बारेमें तरह-तरहकी बातें कहा करते। कोई कहता, वह अपने पिताके समान विद्वान् होगा। कोई कहता—पढ़ते-पढ़ते कहीं बापकी तरह पागल न हो जाय। पागल होनेकी आशंका करनेवालोंमें उसके मामा भी एक थे। बीचमें कभी-कभी वे कहा करते—बेटा, तुम गरीबके लड़के हो, इतना पढ़ लिखकर क्या करोगे? जितना पढ़ चुके हो, उतनेसे ही तुम्हें किसी तरह मुट्ठी-भर अरवा चावल, एक अँगोछा और थाली-लोटा आसानीसे मिल सकता है। इतना पढ़कर क्या अन्तमें तुम भी स्वर्गीय वन्द्योपाध्यायकी तरह घरके कोनेमें बैठकर सिर हिलाया करोगे? अभी जो थोड़ी-बहुत आशा है, फिर वह भी जाती रहेगी।

मामाका यह उपदेश उसके एक कानसे प्रवेश करता, और दूसरेसे तुरत बाहर निकल जाता।

पागल हो जानेकी आशंकासे मामा उसे डाँटा करते, घरका कुछ काम-धंधा न करनेके कारण मामी फटकारा करतीं और व्याकरण-साहित्यमें व्युत्पन्न हुआ जानकर उम्रमें बड़े मातुल-पुत्र उसकी खिल्ली उड़ाया करते। परन्तु काशीनाथ या तो इन बातोंको धीरजके साथ सह लेता या फिर इन सब बातोंके गुरुत्वका अनुभव ही नहीं कर सकता।

कुछ भी हो, नतीजा एक ही हुआ। वह जो नित्य करता था वही करता रहा। शामको कभी तो मैदानमें अपनी मौजसे घूमा करता, कभी नदी-किनारे एक पुराने पीपलके नीचे बैठकर अस्तगामी सूर्यकी रक्तिम आभा देखा करता कि कैसे वह क्रम-क्रमसे आकाशमें विलीन होती है, कभी गाँवके जमींदारके घर शिव-मन्दिरमें जाकर शिवकी आरती अर्धनिमीलित नेत्रोंसे अनुभव किया करता और कभी यह कुछ न कर मामाके चण्डी-मण्डपमें चला जाता और एक अँधेरे कोनेमें कम्बलका आसन बिछाकर चुपचाप बैठा रहता।

मानो दुनियामें उसे कोई काम नहीं, उद्देश्य नहीं, कामना नहीं। बारह वर्षकी उम्रमें उसके पिताका देहान्त हुआ था। ये छह वर्ष उसने अपने मामाके यहाँ इसी तरह काटे हैं। वह अभी क्या करता है, बादमें क्या करेगा, पहले क्या किया है, अब क्या करना जरूरी है और क्या करना चाहिए,—ये सब बातें उसके मनमें कभी उठती ही नहीं। मानो हमेशा उसे इसी तरह दिन बिताने हैं, हमेशा वह इसी तरह मामाके घर दोनों वक्त रूखी-सूखी रोटी और डाँट-फटकार खाता रहेगा, और उसे न कहीं जाना है और न कुछ करना ही है। उसका वह नीरव निस्तब्ध अन्धकार कोना मानो हमेशा उसीके अधिकारमें रहेगा, न कभी कोई कहींसे उसपर दखल जमाने आयेगा और न कोई हटकर दूसरी जगह बैठनेको कहेगा। मुहल्लेका कोई आदमी मेहरबानी करके कभी उसे बुलाकर कहता—काशीनाथ, इस तरह कभी किसीकी गुजर नहीं हुई, और न तुम्हारी होगी। जो भी हो सके, कुछ न कुछ करो। काशीनाथ कुछ जवाब नहीं देता; सिर्फ मन ही मन सोचता कि क्या कर रहा हूँ, और क्या मुझे करना चाहिए? इसी तरह काशीनाथके दिन बीत रहे थे।

२

गाँवके जमींदारका नाम था प्रियनाथ मुखोपाध्याय। प्रियनाथ बाबू महा-कुलीन और अतिशय धनवान् हैं। जब देखा कि कुल-मर्यादाकी रक्षाके लिए इतने बड़े आदमी होनेपर भी कोई सर्वरूपगुणसम्पन्न पात्र इतनी ढूँढ़-खोजके बाद भी नहीं मिला तो उन्हें कुलीनताकी प्रथासे बड़ी चिढ़ हो गई। स्त्रीसे जब कभी इसका जिक्र करते तो वे कहतीं—मेरे एक ही तो लड़की है, मुझे कुलीनता-

को लेकर क्या करना है ?

उनके गुरुदेव उसी गाँवमें रहते थे; उनसे पूछा तो वे बोले—हरि हरि ! ऐसा भी कहीं हो सकता है ? तुम्हें धनकी तो कोई कमी नहीं; किसी गरीब कुलीन सन्तानको कन्या-दान करके जमाई और लड़कीको अपने ही घर रखो। यह देखनेमें भी अच्छा लगेगा और सुननेमें भी। इतना बड़ा वंश, इतना ऊँचा कुल ! इसकी मर्यादा घटना कहीं ठीक हो सकता है ? प्रियनाथ बाबूने घर आकर यह बात कही; स्त्रीने बड़ी खुशीसे अपनी सम्मति जाहिर की—हाँ, यही करो। जितने दिन जीऊँ, कमला मेरे पास ही रहे।

ऐसा ही हुआ। गरीब कुलीन लड़केसे विवाह करके लड़की और दामादको अपने ही घर रखनेका विचार पक्का करके एक दिन प्रियनाथ बाबू पंडित मधुसूदन मुखोपाध्यायके घर पहुँचे। पण्डितजी उस समय यजमानके घर नित्यपूजा करने जा रहे थे; अकस्मात् इतने बड़े जमींदारके पधारनेसे वे बड़े संकोचमें पड़ गये। बेचारे कहाँ बिठावें, क्या खातिर करें, कुछ समझ न सके। प्रियनाथ बाबू समझ गये कि मधुसूदन कुछ संकटमें पड़ गये हैं; हँसकर बोले—आपसे कुछ काम है। चलिए जरा भीतर चलकर बैठें।

"जी हाँ चलिए; पर—"

"पर-वर कुछ नहीं,—चलिए, बैठकर सब बातें कहता हूँ।"

दोनों जनें चण्डीमण्डपमें जाकर बैठे। प्रियनाथ बाबूने कहा—आपका भानजा कहाँ है ?

"और कहाँ होगा, भट्टाचार्यकी पाठशालामें पढ़ता है।"

"जरा बुलाइए तो उसे।"

"बुलाता हूँ; कोई जरूरी काम है क्या ?

"हाँ, एक जरूरी काम है।"

मधुसूदन किसी तरह न समझ सके कि उस अकर्मण्य लड़केसे इतने बड़े जमींदारका क्या जरूरी काम हो सकता है, बल्कि वे कुछ डरकर बोले—कोई कसूर हुआ है क्या उससे ?

"कसूर क्या होगा !"

"तो ?"

प्रिय बाबू हँस पड़े, बोले—मैंने उसे अपना जमाई बनाना तय किया है, और उस नातेसे आप मेरे समधी हुए। यह कहकर वे कहकहा मारकर हँसने लगे। जिस बातको सोचकर उन्हें हँसी आई थी, मधुसूदन अगर उसे जान जाते, तो शायद वे फिर कुछ बोलते ही नहीं। वे मारे आश्चर्यके आँखें फाड़-फाड़कर उनकी तरफ देखने लगे और कुछ देर बाद बोले—किसे?—काशीनाथको?

"हाँ।"

"क्यों?"

"इतने बड़े कुलीन घरका लड़का ढूँढ़नेपर भी मुझे नहीं मिला। आपको इसमें कोई आपत्ति है क्या?"

"आपत्ति! यह तो मेरे परम सौभाग्यकी बात है। पर वह तो पागल है।"

"पागल है? कैसे, मैंने तो कभी सुना नहीं?"

"उसके पिता पागल थे।"

काशीनाथके पिताको प्रिय बाबू खूब अच्छी तरह जानते थे और यह भी जानते थे कि उन्हें बहुतसे लोग पागल कहा करते थे। प्रिय बाबूने कुछ देर जरा विचारकर कहा—लड़केका नाम क्या है?

"काशीनाथ वन्द्योपाध्याय।"

"उसे बुला दीजिए,—मैं जरा देखना चाहता हूँ।"

मधुसूदनने उसे बुलानेके लिए भेज दिया। जो बुलाने गया वह उन्हींका छोटा लड़का था। उसने जाकर पुकारा—काशी भइया! अबकी बार उसने आँख उठाकर देखा और कहा—क्या है?

"पिताजी तुमको बुला रहे हैं"

"क्यों?"

"सो नहीं मालूम। गाँवके जमींदार बाबू आये हैं, उन्होंने तुमको बुलवाया है।"

काशीनाथ धीरेसे पोथी बंद करके उठकर चला आया। जब वह उनके सामने जाकर बैठ गया तो प्रिय बाबूने उसे नीचेसे ऊपरतक अच्छी तरह देखकर कहा—काशीनाथ, कहाँ थे तुम?

"भट्टाचार्यकी पाठशालामें पढ़ रहा था।"

"व्याकरण पढ़ा है तुमने ?

काशीनाथने सिर हिलाकर उत्तर दिया—हाँ पढ़ा है।

"साहित्य पढ़ा है ?"

"मामूली-सा पढ़ा है।"

"अब क्या पढ़ रहे हो ?"

"सांख्य-दर्शन।"

प्रिय बाबूने कहा—अच्छा जाओ, पढ़ो जाकर।

काशीनाथ चला गया। उसे क्यों बुलाया गया और क्यों जानेको कह दिया, उसकी समझमें कुछ न आया। पाठशाला पहुँचकर वह फिर पोथी खोलकर बैठ गया। उसके चले जानेपर प्रिय बाबूने कहा—हाँ, आप वह पागलकी बात क्या कह रहे थे ?

मधुसूदनजीने कहा—नहीं, ठीक पागल तो नहीं है, पर ऐसा ही कुछ अजीब तरहका है, इसीसे कोई-कोई उसे पागल कहते हैं !

"सो कैसे ?

"हमेशा पोथी लिये बैठा रहता है, या फिर अपने ही मनसे इधर-उधर घूमा-फिरा करता है,—किसी भी बातमें या किसी भी काममें नहीं रहता,—ऐसा ही कुछ अजीब-सा है।"

"और कुछ करता है ?"

"यही, कभी अँधेरे घरके कोनेमें घण्टों अकेला चुपचाप बैठा रहता है।"

प्रिय बाबूने हँसते हुए कहा—और कुछ ?

इस हँसीका अर्थ मानो मधुसूदन कुछ-कुछ समझे। जरा इधर-उधर होनेपर बोले—नहीं, और कोई बात नहीं।

"तो घरमें भीतर जाकर जरा पूछ आइए। उन लोगोंकी अगर राय हो, तो इसी महीनेमें ब्याह कर दिया जाय।"

भीतर जाकर पंडितजीने अपनी स्त्रीसे सब हाल कहा। सुनकर वह तो मानो आकाशसे गिर पड़ी। आश्चर्यकी मात्रा जरा कुछ कम होनेपर बोली—काशीके साथ प्रिय बाबूकी लड़कीका ब्याह ! तुम पागल तो नहीं हो गये ?

"इसमें पागल होनेकी कौन-सी बात है ?"

"तो, और क्या ?"

"काशीनाथ कितने बड़े कुलीन घरका लड़का है, जरा सोचो तो ?"

पंडितानीजीने एक गहरी उसाँस लेकर कहा—अपने हरीके साथ नहीं हो सकता ?

इस बातको दोनों ही जानते थे कि नहीं हो सकता। पंडितजीने एक लम्बी साँस लेकर कहा—तुम्हारी क्या राय है ?

पंडितानीजीने विषाद-भरे स्वरसे कहा—राय क्या होगी, ब्याह दो।

पंडितजीने बाहर आकर सूखी हँसी हँसते हुए कहा—ब्राह्मणीके आनन्दका क्या ठिकाना,—फूली नहीं समाती। वही काशीकी माँके स्थानपर है। काशी दो वर्षका भी नहीं हुआ था कि मेरी बहनका स्वर्गवास हो गया। तबसे एक-तरहसे उसीने इसे पाल-पोसकर इतना बड़ा किया है। उसके बाद जबसे बहनोई साहबका देहान्त हुआ, तबसे वह यहीं रह रहा है।

प्रिय बाबूने कहा—मुझे सब मालूम है। तो फिर आज ही सब स्थिर कर डालिए।

"क्या, स्थिर क्या करना है ? आपको जब सुभीता हो, उसी दिन मैं आशीर्वाद दे आऊँगा।"

"सो बात नहीं; मैं कुलीनताकी मर्यादाकी बात पूछ रहा हूँ।"

"उस विषयमें मैं और क्या स्थिर करूँगा ? आप जो अनुमति देंगे, वही होगा; फिर भी आपके भावी जमाईकी मामीसे,—वही उसकी एक तरहसे माँ भी है—जरा बात कर लेना ठीक होगा।"

"हाँ हाँ, जरूर। यही तो मैं कह रहा था।"

इसके बाद लड़केकी मामीकी राय लेकर प्रिय बाबूकी इच्छासे ही निर्णय हो गया कि जननी-स्थानीया समधिनजी एक हजार रुपये नकद लिये बिना काशीनाथ-को किसी भी तरह नहीं ब्याहने देंगी। अन्तमें ऐसा ही हुआ। प्रियनाथ बाबूने इसमें कोई आपत्ति नहीं की।

३

पहले चाहे कुछ भी होता हो, पर काशीनाथने जब देखा कि वह बाकायदा और स्थायी रूपसे घर-जमाई हो गया है, तब उसे मानसिक सुख नहीं रहा।

अब वह जहाँ चाहे वहाँ जा नहीं सकता, जहाँ इच्छा हो वहाँ खड़ा नहीं रह सकता; सभी चीजोंसे मानो उसे अलग कर दिया गया है। वह जहाँ जाना चाहता है वहाँके लिए या तो ससुर साहबकी अनुमति नहीं मिलती, और किसी तरह मिल भी जाती है तो सास साहिबा झुँझलाकर कहने लगती हैं—'क्या मेरा दामाद,—और क्या फलानेके घर जायगा ?' दामाद बेचारा यों ही मन मारकर रह जाता। क्यों हुआ ऐसा, क्यों उसे इस तरह रखा गया है, ऐसा करनेमें किसीका क्या उद्देश्य सिद्ध होगा,—उसकी समझमें कुछ भी नहीं आता। कभी-कभी वह भी अपने मनको समझा लेता,—मैं क्या कोई मामूली आदमी हूँ जो जहाँ-तहाँ मारा-मारा फिरूँ! मगर भीतरसे उसका हृदय रोकर कहता—आराम नहीं, चैन नहीं, शान्ति नहीं। पहले वह कँटीले जंगलमें अपने इच्छानुसार घूमा-फिरा करता था, अब सोनेके पिंजड़ेमें बंद है, इस बातको वह समझने लगा है। पहले वह असीम और विशाल समुद्रमें तैरता फिरता था, अब उसे चारों ओरसे बँधी हुई पुष्करिणीमें छोड़ दिया गया है। समुद्रमें वह बहुत सुखसे बहता फिरता था, सो बात नहीं,—वहाँ उसे तूफान और तरंगोंसे खूब जूझना पड़ता था; परन्तु यह निर्मल सरोवर तो उससे भी बढ़कर कष्टकर मालूम होता है। कभी-कभी वह ऐसा महसूस करने लगता जैसे अचानक उसे किसीने गरम पानीके कड़ाहेमें छोड़ दिया हो। मानों सबने मिलकर सलाह करके उसकी देहको खरीद लिया हो,—मानो अब वह उसकी अपनी नहीं रही। सिरपर वह चोटी नहीं, कण्ठमें वह तुलसीकी माला नहीं, नंगे पैर नहीं, उघाड़ा बदन नहीं, धनंजय भट्टाचार्यकी वह पाठशाला नहीं,—नदी-किनारेका वह पीपलका पेड़ नहीं, चण्डीमण्डपका वह कोना नहीं—कुछ भी तो नहीं!

मानों उसने नया जन्म लेकर पहले जन्मकी सब चीजें झाड़-झूड़कर फेंक दी हैं। अथवा उसकी देह और मन दोनों आपसमें लड़-झगड़कर अलग हो गये हैं। शाम होते ही उसका मन जब नदी-किनारेके उस पीपलके नीचे या खेतोंके आस-पास किसानोंमें भटकता रहता तब देह उसकी बहुमूल्य पोशाक पहने बग्घी-पर हवा खाया करती। मन जब अँगोछा पहिनकर नदीमें कूदकर तैरता होता, तब देह उसकी चौकीपर बैठी नौकरों द्वारा साबुन-तेलसे धुलती-पुछती रहती। इस तरह एक ही काशीनाथ हमेशा दो जगह दो काम करता रहता, फिर भी

कोई काम उसका सर्वाङ्गसुन्दर न होता, पूरा भी न होता।

कितने ही दिन इसी तरह बीत गये। एक-एक करके ससुरालमें बारह महीने गुजर गये। पहलेके कुछ महीने बुरे नहीं बीते,—हाल-फूल और नयेपनके मोहमें उसे अपनी अवस्थाके दोष-गुण देखनेकी फुरसत ही नहीं मिली; परन्तु जब मिली तब दिनों दिन सूखने लगा। और किसीने इस बातको समझा हो चाहे नहीं; पर कमला समझ गई; उसकी आँखोंने पतिकी अवस्था ताड़ ली। एक दिन उसने कहा—तुम दिनपर दिन सूखते क्यों जाते हो?

"कौन कहता है?"

"मेरी आँखें कह रही हैं।"

"गलत कह रही हैं।"

कमलाने पीछा नहीं छोड़ा, बोली—क्या बात है, मुझसे नहीं कहोगे?

"कुछ भी तो नहीं हुआ है, क्या बताऊँ!"

"हुआ है।"

"नहीं तो।"

"जरूर हुआ है। मेरा मन सब जानता है।"

काशीनाथने मुँह फेरकर कहा—तुम बहुत परेशान किया करती हो, मैं यहाँसे जाता हूँ।

काशीनाथ जाने लगा तो कमलाने हाथ पकड़ लिया; व्याकुल होकर कहा—जाओ मत,—मैं अबसे कोई बात न पूछा करूँगी।

काशीनाथ एक बार बैठ गया, पर दूसरे ही क्षण चटसे उठकर चल दिया। कमलाने फिर उसे बैठनेके लिए नहीं कहा। पतिके इस तरह चले जानेपर वह तकियेमें मुँह छिपाकर रोने लगी।

बाहर जाकर काशीनाथने जब देखा कि उसपर किसीकी आँख नहीं है, तो धीरे-धीरे फाटक पार होकर वह सड़कपर चल दिया। बहुत दूर निकल जानेपर उसने देखा कि पीछे-पीछे एक दरबान भी चला आ रहा है! काशीनाथ झुँझला उठा, उसने पीछेको मुड़कर कहा—तू कहाँ जा रहा है?

उसने सलाम करके कहा—हुजूरके साथ।

"मेरे साथ जानेकी जरूरत नहीं—लौट जा।"

"शामके वक्त अकेले ही घूमेंगे हुजूर ?"

कुछ जवाब न देकर काशीनाथ फिर चलने लगा। दरबान बेचारा क्या करे, कुछ समझ न सका। अन्तमें कुछ देर खड़े रहकर उसने अपनी बुद्धि खर्च की और तय किया कि चलना ही चाहिए। काशीनाथने उधर कुछ ध्यान नहीं दिया, इच्छानुसार चलता-चलता वह मामाके घर जा पहुँचा। भीतर जाकर सूने मनसे घरके बरंडेमें जाकर बैठ गया। बहुत देरतक बैठे रहनेके बाद जब हरि बाबू बाहर घूमने निकले तो उन्होंने उसे देख लिया। मगर कुछ-कुछ अँधेरा हो चुका था, इसलिए वे पहचान न सके। पास जाकर पूछा—कौन है ?

काशीनाथने कहा—मैं हूँ।

हरि बाबूको बड़ा आश्चर्य हुआ, बोले—एँ ! कुँवर साहब ! यहाँ कैसे ?

काशीनाथ मौन रहा। तब हरि बाबूने शोर मचाते हुए कहा—माँ, देखो, यहाँ देखो, जमींदार साहबके कुँवरजी आये हैं,—बैठनेके लिए आसनतक किसीने नहीं दिया !

हरीकी माँ दौड़ी आई, बोली—धन्य भाग, दुखिया मामीकी सुध आई बेटा ?

काशीनाथ अब भी चुप रहा। मामीने अपनी लड़की बिन्दुवासिनीको बुलाकर कहा—बिन्दु, जल्दी आ, देख तेरे काशी भइया आये हैं, बैठनेके लिए कुछ ले आ;—तबतक मैं संध्या-पूजन कर लूँ।

बिन्दुवासिनी मधुसूदन भट्टाचार्यकी छोटी लड़की है। गृहस्थ-घरकी बहू होनेके कारण मायके बहुत नहीं आ पाती। आज महीना-भर हुआ है उसे आये, पर अबतक काशी भइयाको उसने नहीं देखा। काशी भइयाको वह बहुत प्यार करती है, इसीसे भइयाका नाम सुनते ही वह दौड़ी आई। आकर देखा, तो कहीं कोई नहीं है,—सिर्फ एक बाबू अँधेरे बरंडेमें बैठे हैं। ऐसे काशी भइयाको तो उसने पहले कभी देखा नहीं था ! काशी भइया अब बड़े आदमीके जमाई हो गये हैं और 'बाबू' बन गये हैं, यह देखकर उसे हँसी आई, पर पास जाकर अँधेरेमें जो उसने भइयाका म्लान और सूखा मुँह देखा तो उसकी हँसी गायब हो गई। काशीनाथका मुख म्लान होते हुए पहले कभी किसीने नहीं देखा, खासकर बिन्दुने;—घर-भरमें सिर्फ वही एक अपने काशी भइयाको कुछ-कुछ पहचान सकी थी। उसने पास आकर, पीठपर हाथ फेरते हुए बड़े स्नेहसे कहा—काशी

भइया, यहाँ अकेले क्यों बैठे हो! चलो भीतर चलके बैठो, उठो। काशीनाथ चुपचाप उठकर घरके भीतर जाकर खाटपर बैठ गया।

बिन्दुने कहा—भइया, यहाँ आये मुझे कितने दिन हो गये, तुम एक दिन देखनेतक भी नहीं आये?

"आ नहीं सका, बहन।"

"क्यों, आ क्यों नहीं सके?"

काशीनाथने जरा इधर-उधर करके कहा—आने नहीं देते।

"आने नहीं देते क्यों?"

काशीनाथने अनमने भावसे कहा—यों ही, ऐसे ही।

बिन्दुने दुःखित होकर पूछा—तुम जहाँ जाना चाहते हो, वहाँ जाने नहीं देते?

"नहीं, नहीं जाने देते। मैं कहीं जाता हूँ तो उससे ससुरका अपमान होता है।"

बिन्दु समझ गई कि इन बातोंसे भइयाको कष्ट हो रहा है, इसलिए उसने बातका सिलसिला बदलकर कहा—भइया, तुमने अपनी बहू नहीं दिखाई?

काशीनाथ मौन रहा।

बिन्दुने फिर कहा—कैसी बहू मिली है?

"अच्छी।"

"तो किसी दिन जाकर मैं देख आऊँ?"

काशीनाथने मुँह उठाकर बिन्दुके मुखकी ओर देखा और कुछ हँसकर कहा—देख आना।

इतनेमें बाहरसे गाड़ीकी आहट सुनाई दी। बिन्दुने कहा—मालूम पड़ता है, तुम्हारी गाड़ी आ गई।

"हाँ, मालूम तो पड़ता है।" जाते वक्त उसने पूछा—"कब आओगी?"

"कहाँ?"

"बहू देखने।"

बिन्दुने मुसकराते हुए कहा—तुम्हें जब फुरसत हो उस दिन आकर ले जाना।

"कल आऊँ?"

"जरूर आना।"

दूसरे दिन काशीनाथ गाड़ी लेकर खुद आया। बिन्दुके जाते समय कहींसे

हरि बाबू आ पहुँचे। वे आते हुए दरवाजेपर गाड़ी खड़ी देख गये थे और काशीनाथके आनेका भी अनुमान कर चुके थे। भीतर आते ही उन्होंने माँसे पूछा, "बिन्दु कहाँ जाती है?" माँने कहा, "जरा बहूको देखने जा रही है।"

"किस बहूको? जमींदारकी लड़कीको?"

माँने कुछ जवाब नहीं दिया।

हरि बाबूने बहुत गम्भीर मुद्रा बनाकर कहा—बिन्दु अगर वहाँ गई तो मैं जिन्दगी-भर उसका मुँह नहीं देखूँगा।

माँने आश्चर्य-चकित होकर पूछा—क्यों? भाईकी बहूको देखने जायगी, इसमें कौन-सी बुराई हो गई?

"बुराई-भलाई समझानेकी अभी मुझे फुरसत नहीं। बिन्दु अगर मेरी बात न माने तो वह इस घरमें भी फिर न आवे, बस।"

हरि भइया कैसे स्वभावके आदमी हैं यह बिन्दुसे छिपा न था। उसने चुपकेसे सब कपड़े-लत्ते उतारकर रख दिये। काशीनाथ खड़े-खड़े सब देखता रहा और फिर अपना-सा मुँह लिये गाड़ीमें आकर बैठ गया।

शामको कमलाने आकर पूछा—क्यों, ननदजी नहीं आईं?

काशीनाथने दीन-स्वरमें कहा—भेजा नहीं उन लोगोंने।

"क्यों?"

"मालूम नहीं; शायद यहाँ भेजनेमें उन्हें शरम मालूम होती है।"

यह बात कमलाके हृदयमें जाकर छिद गई।

४

कमला जमींदार प्रिय बाबूकी इकलौती सन्तान है। उन्होंने पहले दो ब्याह और भी किये थे; पर उनसे कोई सन्तान नहीं हुई। दोनों स्त्रियोंके मर जानेपर मानसिक दुःखसे वृद्धावस्थामें इन्होंने यह तीसरा ब्याह किया जिसका फल हुआ यह एकमात्र कन्या-रत्न। निःसन्तानके सन्तान होनेपर पुत्र-कन्यामें कोई भेद नहीं रहता, इसीसे कमला घरमें मालिककी भी मालिक और मालकिनकी भी मालकिन बनकर रही। घर-भरमें किसीमें इतनी हिम्मत न थी कि उसकी बात काटे या उसकी मरजीके खिलाफ काम करे। कमला धनवती है, विद्यावती है,

रूपवती है, गुणवती है, सब विषयोंमें उसका एकाधिपत्य है, फिर भी एक आदमी-को वह किसी भी तरह बसमें न कर सकी और जिसे बस न कर सकी वह है उसका पति। कमलाने बहुत उपाय कर देखे—गुस्सा होकर देखा, दुःखित होकर देखा, मान-अभिमान करके देखा, सेवा करके देखा; मगर किसी भी तरह वह पतिके मनपर कब्जा न कर सकी। कब्जा करना तो दूर रहा, शायद उसके पासतक भी नहीं पहुँच पाई। एक गरीब आदमी कितना ऊँचा मन लेकर उसका पति बनकर आया है, इस बातको वह किसी भी तरह निर्णय नहीं कर पाई। रोज दोनों वक्त कमला प्रार्थना करती—भगवान्, उनका मन मुझे दे दो। कभी-कभी उसे मन ही मन लगता कि शायद उनके मन है ही नहीं, इससे उसे वह नहीं पा सकती! कमलाके लिए उसका पति एक जटिल रहस्यके रूपमें उपस्थित था; ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे, त्यों-त्यों उसके खोलनेका मार्ग पाना तो दूर रहा, जटिलता और बढ़ती गई। कभी-कभी मनमें आता, पतिका इतना ज्यादा प्रेम शायद और किसी भी स्त्रीको नहीं मिला होगा; परन्तु कभी-कभी सोचती इतनी भीषण उपेक्षा भी शायद कभी किसी स्त्रीके भाग्यमें न बदी होगी। फिर भी कमलाके दिन कटने लगे। सिर्फ कटते नहीं थे तो काशीनाथके। उसका न तो पोथियोंमें ही मन लगता, न चुपचाप बैठनेमें उसे आनन्द आता और न बातचीत हँसी-मजाकमें कुछ रस मिलता। उसका खूब हृष्ट-पुष्ट शरीर कृश होने लगा, गोरा वर्ण काला होने लगा। पतिकी दिनपर दिन ऐसी क्षीण हालत होती देखकर कमलाने सिरपर हाथ दे मारे। पहले उसने प्रतिज्ञा की थी कि इस बारेमें वह कुछ न पूछेगी; परन्तु उस प्रतिज्ञाकी रक्षा नहीं की जा सकी। एक दिन पतिके आनेपर वह उसके पैरोंपर सिर रखकर रोने लगी। काशीनाथने घबराकर उसे उठानेकी चेष्टा की, पर वह उसे उठा नहीं सका।

"क्या हुआ, रो क्यों रही हो?"

कमलाने कुछ जवाब नहीं दिया। बहुत देरतक रोते रहनेके बाद वह फिर पैरोंपर सिर रखकर बोली—तुम मुझे बिलकुल ही मार डालो; इस तरह थोड़ा-थोड़ा करके मत जलाओ।

काशीनाथ बहुत ही विस्मित हुआ, बोला—क्या बात है, बताओ भी तो, क्या किया है मैंने?

"सो क्या तुम नहीं जानते ?

"क्या, मुझे तो कुछ नहीं मालूम !"

"और जो जीमें आये सो करो; पर मेरे खड़े रहनेके लिए जरा-सी जगह तो रखो। और मैं कुछ नहीं चाहती।"

अबकी बार काशीनाथने कमलाको उठाया और पास बिठाकर बड़े प्रेमसे पूछा—क्या हुआ है, मुझे साफ-साफ समझाओ।

"तुम दिनपर दिन ऐसे क्यों होते जाते हो ?"

"मेरा शरीर क्या बहुत दुर्बल हो गया है ?"

कमला आँखोंपर आँचल रखे रो रही थी, उसी अवस्थामें सिर हिलाकर बोली—हाँ, हो गया है।

"यह मैं भी समझता हूँ, पर क्या करूँ, तुम्हीं बताओ ?"

कमलाने मुँह उठाकर कहा—दवा खाओ।

काशीनाथने हँसते हुए कहा—दवासे आराम न होगा।

"तो काहेसे होगा ?"

"यह नहीं जानता।"

"दवासे आराम न होगा, और किससे होगा, सो जानते नहीं; तो क्या मेरी तकदीर बिलकुल जला ही डालोगे ?"

काशीनाथ था संस्कृत पाठशालामें पढ़ा हुआ, सीधा-साधा आदमी। प्रीति-प्रेमकी रीति-नीतिसे बिलकुल नावाकिफ, प्रणय-सम्भाषण करना भी उसे न आता था; किन्तु फिर भी वह इस समय स्वाभाविक स्नेहसे ओत-प्रोत होकर कमलाका हाथ पकड़कर उसकी आँखें पोंछता हुआ बोला—यहाँ मुझे सुख नहीं मिलता,—इसीसे शायद ऐसा होता जाता हूँ।

"तो फिर यहाँ रहते क्यों हो ?"

"न रहूँ, तो कहाँ जाऊँ ?"

"यहाँके सिवा और क्या कहीं जगह नहीं ? जहाँ आनन्द मिले वहाँ जाकर रहो।"

"सो हो नहीं सकता।"

"क्यों नहीं हो सकता ?"

"यहाँ न रहूँ तो ससुरजीको अच्छा लगेगा ?"

"और इस तरह सूख-सूखकर काँटा हो जाना उन्हें अच्छा लगेगा ?"

"अच्छा तो नहीं लगेगा; पर उपाय क्या है ? तुम्हारे पिताने गरीब देखकर —"

कमलाने मुँहपर हाथ रखकर आगे कहनेसे रोक दिया; कहा—राम राम, ऐसी बातें न करो। मुझसे सब बातें खोलकर कहो, मैं कुछ न कुछ तरकीब निकाल लूँगी।

काशीनाथने सोचकर कहा—सब बातें तुमसे खोलकर कही नहीं जा सकतीं। फिर कुछ देर मौन रहकर कहा—यह सब देख-सुनकर विचार उठता है कि हमारा तुम्हारा ब्याह न होता तो अच्छा था।

"क्यों ?"

"तुम्हीं बताओ, मुझे पाकर क्या तुम एक दिनके लिए भी सुखी हुई हो ? मैं प्रीतकी रीत नहीं जानता ! आदर-प्यार नहीं जानता; दर-असल देखा जाय तो कुछ भी नहीं जानता। और इस उम्रमें तुम्हारी न जाने कितनी साधें,—कितनी कामनाएँ हैं, क्या उनमेंसे एककी भी मुझसे पूर्ति हुई है ? मानों मैं तुम्हारा पति नहीं, सिर्फ पतिकी छाया हूँ।"

कमलाकी आँखोंसे आँसू गिरने लगे। वह सब बातें अच्छी तरह समझ भी न पाई। एक बात उसके हृदयमें भीतरसे अबतक बाहर निकलनेके लिए फड़फड़ा रही थी, मानो वह बलपूर्वक किसी वायु-हीन घरमें बन्द करके रख छोड़ी गई हो, बहुत जोर लगानेपर अबकी बार वह बाहर निकल पड़ी। काँपते हुए स्वरमें कमलाने पूछा—

"मुझे क्या तुम देख नहीं सकते ?"

"यह बात फिर कभी बताऊँगा।"

"नहीं, बताओ,—मुझसे ब्याह करके क्या तुम सुखी नहीं हुए ?"

"क्या मालूम, शायद नहीं हुआ।"

"और किसीसे ब्याह करके सुखी होते ?"

"यह भी ठीक नहीं कह सकता।"

सुनकर कमलाके सारे अंग जलने-से लगे। इतनेमें बाहरसे नौकरानीने आकर

कहा—जीजी, माँजीको बड़े जोरका बुखार आया है,—वे तुम्हें बुला रही हैं। कमला आँखें पोंछती हुई बाहर चली गई।

८

कमलाकी माँका वह बुखार अच्छा नहीं हुआ। पन्द्रह दिन तकलीफ पाकर और अन्तमें सबको रुलाकर वे इस लोकसे चल दीं। पत्नी-शोकसे प्रिय बाबूको गहरी चोट पहुँची। इस बुढ़ापेमें उन्होंने भी समझ लिया कि अब मैं ज्यादा दिनका मेहमान नहीं हूँ। अब कमलापर ही सारे काम-काजका बोझ आ पड़ा। दुनियामें अपनी सुख-चिन्ताके सिवा भी आदमीको बहुत-कुछ करना पड़ता है। वृद्ध पिता क्रमशः अपटु होते जाते थे, इसलिए कमला अब हर वक्त उन्हींके पास रहने लगी। और काशीनाथ? उसकी तो 'तीन लोकसे मथुरा न्यारी' थी। मौका पाकर वह पुस्तकोंका गट्टर लेकर और दरवाजा बन्द करके अध्ययन करने बैठ गया। जब पुस्तकोंसे जी ऊब जाता तब बाहरकी हवा खा आता। कभी-कभी तो दो-दो दिनतक घर ही न आता। कहाँ खाता-पीता, कहाँ सोता,—किसीको कुछ पता ही नहीं पड़ता। यह सब देख-सुनकर कमला एक तरहसे बिलकुल हताश हो गई। युवती होनेपर भी वह अभीतक बालिका ही तो थी। पति-प्रेम और स्वामि-भक्तिको उसने अब भी पूरी तरह नहीं सीख पाया था। सीखती ही थी कि विघ्न पड़ गया और सो भी पतिके द्वारा ही। इसमें उसका क्या दोष? जो कुछ सीखा था, धीरे-धीरे उसे भूलने लगी। अबतक उसकी हृदय-कसौटीपर जो थोड़ी-बहुत सोनेकी लकीरें पड़ी थीं, वे अभीतक चमकीतक न थीं, बाहरकी सुन्दरता अभीतक भीतर प्रतिबिम्बित भी न हो पाई थी कि लापरवाही और असावधानीसे क्रमशः क्षय होने लगीं। अन्तमें वे कब बिलकुल मिट गईं, कमला जान भी न सकी। कभी-कभी वह देखती कि एक टूटी-फूटी इमारतकी दो-चार ईंटें, दो-चार लकड़ीके टुकड़े और पत्थर इधर-उधर बिखरे पड़े हैं मगर उन सबको इकट्ठा करके और जोड़कर फिरसे अट्टालिका खड़ी करनेकी न तो उसकी इच्छा ही होती थी और न उसमें इतना सामर्थ्य ही था। यहाँ किसी समय एक राज-प्रासाद था, प्रमोद-कानन भी था: स्वप्नके नशेमें वह आया था और उसके टूटनेपर चला गया। अब उसे इतना भी अरमान नहीं

कि वह उस स्वप्नको फिरसे देखे। जो गया सो गया।

वृद्ध पिताकी सेवा और नौकर-नौकरानियोंकी देख-भाल करते हुए उसके दिन एक तरहके कर्म-सुखमें बीत रहे थे, मगर एकको जिस काममें सुख मिलता है उसमें दूसरेको शायद नहीं मिलता। कमला जो सुख अनुभव करने लगी, बूढ़ी नौकरानी उससे भीतर ही भीतर क्लेश पाने लगी। आखिर बहुत-कुछ देख-सुनकर एक दिन उसने एकान्त पाकर प्रिय बाबूसे कहा—कुँवरजी न जाने कैसे होते जाते हैं! कभी घरपर रहते हैं, कभी चले जाते हैं,—कब क्या किया करते हैं, घरवालोंको कुछ मालूम ही नहीं होता। बिटियासे भी शायद बातचीत नहीं होती।

प्रिय बाबू अपने ही शरीर और तबीयतसे परेशान रहते थे, इन सब बातोंकी ओर नहीं देख पाते थे। बुढ़ियाकी बातोंसे उन्हें चेत हुआ। कमलाके आनेपर उन्होंने बड़े स्नेहसे कहा—बिटिया, जो मैं पूछूँ उसका ठीक-ठीक जवाब दोगी?

कमला पिताके चेहरेकी तरफ देखकर बोली—किस बातका बाबूजी?

"देखो बिटिया, मुझसे शरमानेकी कोई बात नहीं; आफत-विपतमें बापसे कोई बात छिपानी भी नहीं चाहिए; सब बातें साफ-साफ कह दो, मैं खुद सब झगड़ा मिटाकर जाऊँगा।"

कमला मौन रही।

प्रिय बाबूने फिर कहा—तुम सुखी रहो, इसीलिए तो तुम्हें सुपात्रके हाथ सौंपा है बेटी। तुम्हें छोड़ मेरा और कोई नहीं, किन्तु तुम्हें दुःखी देख मरनेपर भी मैं सुखी नहीं हो सकता। वृद्ध पिताकी आँखोंसे आँसू ढलकने लगे। कमला-का भी यही हाल था; पिताने बड़े स्नेहसे कमलाकी आँखें पोंछते हुए कहा—सब बातें मुझे साफ-साफ न बताएगी, बिटिया?

पर क्या कहे, कमलाकी समझमें कुछ न आया। बाबू कुछ देर चुप रहकर फिर बोले—कुछ झगड़ा हो गया है, क्यों?

कमलाने मन ही मन कहा, मेल ही कब था जो झगड़ा हो! सिर हिलाकर जवाब दिया—नहीं।

"झगड़ा नहीं हुआ तो क्या तू उसे सुहाती नहीं? क्या बात है?"

कमलाकी एक बार तबीयत तो हुई कि कह दे—हाँ, यही बात है। मगर यह

उससे हो न सका। पतिको वह सुहाती नहीं, यह कहनेके लिए उसका हृदय तैयार नहीं हुआ, उसपर चोट-सी लगी। वह चुप हो रही। प्रिय बाबूने म्लान मुखसे हँसते हुए कहा—तो क्या तुझे वह नहीं सुहाता? कमला सोचने लगी, शायद यही बात हो, मुझे ही शायद वे नहीं सुहाते। मगर यह कैसी बात, मुझे अपना पति नहीं सुहाता? कमलाने काँपकर अपने हृदयके भीतरतक देखनेकी कोशिश की; देखा, वहाँका संगीत बंद हो गया है; सिर्फ बीच-बीचमें दो-एक आदमी चीज-वस्त समेट ले जानेके लिए आते दीखते हैं और उन्हींके हाथके बाजेसे असावधानीसे कभी-कभी कोई सुर निकल पड़ता है और कभी-कभी एक-आध अभिनेता किनारेसे झाँक जाता है, बस। कमलाने रोकर आँखोंको आँचलसे ढँक लिया। प्रिय बाबू बहुत ही कातर होकर बोले—रो मत बेटी।

"बाबूजी, हम लोग जैसे कोई किसीके नहीं है!"

प्रिय बाबूने धीरेसे लड़कीको अपनी छातीके पास खींच लिया। धीरे-धीरे वे बहुत ही कोमल स्वरमें बोले—छिः बेटी, ऐसी बात कहीं कही जाती है! तू जिसकी लड़की है वह मेरी सर्वस्व थी। अब भी वह रोज रातको मेरे पाँवोंके पास आकर बैठी रहती है; सिर्फ तुम लोगोंके डरसे दिनको नहीं आती। शाम हो रही है; अगर वह आकर तेरी ये बातें सुन लेगी तो जीमें बड़ा दुःख पायेगी।

शाम हो चुकी थी, कमरेमें अँधेरा हो रहा था। कमलाने चौंककर चारों तरफ एक नजर डालकर देखा कि वास्तवमें कोई घरमें आया है या नहीं! कहीं भी कोई न था, देखकर उसे तसल्ली हुई। जब वह बाहर आई तो उसके पैर काँप रहे थे; शरीर इतना दुर्बल मालूम होता था कि मानो आधा खून किसीने निकाल लिया हो। अपना सब काम-काज कर चुकनेके बाद वह काशीनाथके उस कमरेमें जाकर बैठ गई, जहाँ वह जमीनपर आसन बिछाकर दीआ जलाकर पोथी खोले बैठा था। काशीनाथने आँख उठाकर देखा कि कमला है। आश्चर्यसे बोला—तुम आई हो?

"हाँ, मैं आई हूँ।"

"बैठो", कहकर काशीनाथ फिर पढ़नेमें तल्लीन हो गया! कमला बहुत देर-तक पतिका अध्ययन देखती रही। इसके बाद उसने अपने हाथसे पोथी बन्द

कर दी। काशीनाथने आश्चर्यसे मुँह उठाकर कहा—बन्द कर दी ?

"कुछ बातचीत करो। रोज ही तो पढ़ते हो; एक दिन न पढ़ोगे तो कोई हर्ज न होगा।"

"इसीलिए पोथी बन्द कर दी है ?"

"सिर्फ इसीलिए नहीं; तुम नाराज होगे, कुछ कहो-सुनोगे,—इसलिए भी।"

काशीनाथने मुस्कराते हुए कहा—क्यों नाराज होऊँगा कमला; तुमसे कभी आधी बात भी मैंने कही है ?—तुम बोलती नहीं, पास आती नहीं, फिर पढ़ूँ नहीं तो बताओ दिन कैसे काटूँ ? फिर जरा हँसकर कहा—बुखार आ रहा है, आज दो दिनसे कुछ खाया-पीया नहीं, पर तुमने तो एक बार भी खबर नहीं ली।

कमलाने मुँह उठाकर देखा—पतिका चेहरा बिलकुल सूख-सा गया है। माथेपर हाथ रखकर देखा—खूब गरम है। तब वह रोकर पतिकी गोदमें लोट गई, लज्जाके मारे उसे मर जानेकी इच्छा हो आई, रोते-रोते बोली—तुम मेरे दोष भूलकर मुझे एक बार फिर अपना लो, और तुम्हारा सारा भार मुझे अपने ऊपर ले लेने दो।

"मैं तो दे सकता हूँ, पर क्या तुम उसे सँभाल सकोगी ?"

"क्यों नहीं सँभाल सकूँगी !"

"देखता हूँ।"

"मुझे अपना लो।"

"बहुत दिनसे अपना लिया है, पर तुमने मुझे समझा नहीं; और आगे भी शायद हमेशा ठीक-ठीक नहीं समझ सकोगी।"

कमलाने दिआके उजालेमें उस चेहरेको जी भरकर देखा। एक बार मनमें आया—उस चेहरेके भीतर राखसे दबी काफी आग है, मोमसे ढका बहुत-सा मधु है। क्षण-भरके लिए वह अपनेको भूल गई; वह पूर्ण आवेगके साथ कह उठी--मुझे इतने दिनतक पहचानने क्यों नहीं दिया ? क्यों तुम अपनेको छिपाये रखकर इतने दिनोंतक मुझे इतना सताते रहे ? मारे आनन्दके कमला पतिके गलेसे लिपट गई। काशीनाथकी आँखोंसे उस दिन आँसू गिरने लगे।

६

दूसरे दिन प्रिय बाबूने काशीनाथको अपने पास बुलाकर कहा—बेटा, मेरा अब क्या ठीक है, कब चल बसूँ; मेरे कोई लड़का-बाला नहीं; जो कुछ जमीन-जायदाद छोड़ जाऊँगा सब तुम्हारी ही है। कितने दिन जीऊँ, मेरे सामने ही तुम सब समझ-बूझ लो, नहीं तो कुछ बचेगा नहीं, लोग सब ठग लेंगे।

काशीनाथने सिर झुकाये हुए कहा—आज्ञा कीजिए।

बाबूने कहा—आज्ञा और क्या करूँगा, कलसे रोज सवेरे एक बार अपनी कचहरीमें जाकर बैठा करो।

"जो आज्ञा" कहकर काशीनाथ चला गया। प्रिय बाबूने लड़कीको बुलाकर कहा—बेटी, बूढ़ा हो गया हूँ, अब काम-काज सँभालते बनता नहीं, इसलिए काशीनाथको जमींदारीका सारा भार सौंप दिया है। आगे चलकर काममें किसी तरहकी असुबिधा न हो, इसलिए बीच-बीचमें समझाता-बुझाता रहूँगा।

कई दिनतक प्रिय बाबू स्वयं काशीनाथके साथ कचहरी गये और जमींदारीके सम्बन्धकी बहुत-सी बातें अच्छी तरह समझाते रहे। वह भी एक काम पाकर बहुत खुश हुआ। घरमें भीतर ही भीतर जो आग सुलग रही थी, बहुत दिन बाद उसकी ज्वाला मानो धीरे-धीरे कम होने लगी।

काशीनाथ अब नियमित रूपसे जमींदारीका काम काज देखता है, कमला नियमित रूपसे घर-गिरस्ती सँभालती है; और प्रिय बाबू नियमित रूपसे शय्यापर पड़े रहते हैं। इस तरह बड़े मजेसे संसार चल रहा था, पर कुछ ही दिनों बाद प्रिय बाबूके शरीरकी हालत बिगड़ने लगी। एक दिन उन्होंने कमलाको बुलाकर कहा—मैंने वसीयतनामा लिखवाया है, और तकियेके नीचेसे एक कागज निकालकर वे उसे पढ़ने लगे—मैं अपनी स्थावर और सम्पूर्ण सम्पत्तिका आधा हिस्सा अपने दामाद काशीनाथको और आधा हिस्सा पुत्री कमलादेवीको दिये जाता हूँ,—क्यों बेटी, ठीक हुआ न ?

कमलाने कुछ जवाब नहीं दिया। प्रिय बाबू विस्मित होकर बोले—क्यों बिटिया, क्या तुझे पसन्द नहीं आया ? यह वसीयतनामा उन्होंने खास तौरसे कमलाको प्रसन्न करनेके लिए ही लिखा था। उनका खयाल था कि सम्पत्तिका

अधिकार काशीनाथको देनेसे कमला बहुत खुश होगी, मगर कमला जो कुछ सोच रही थी, उसे मुँहसे कहनेमें उसको शर्म मालूम होने लगी। प्रिय बाबूने फिर पूछा—कुछ कहना है क्या ?

कमलाने सिर हिलाकर कहा—हाँ।

"क्या बेटी ?"

कमलाने जरा इधर-उधर करके कहा—सब सम्पत्ति मेरे ही नाम लिख दो।

"सो क्यों बिटिया ?"

कमला मुँह नीचा किये बैठी रही।

प्रिय बाबू पुराने अनुभवी ठहरे, उन्होंने जमाना देखा सुना था, कमलाके मनकी बात उनसे छिपी न रही। वे एक-एक करके सब बातें ज्यों-ज्यों भीतर पैठकर—बातकी तहतक पहुँचकर समझने लगे, त्यों-त्यों थोड़ी-थोड़ी अवसन्नता उनके सारे शरीरमें फैलने लगी। जिस तकियेका सहारा लेकर वे बैठे थे; उसीपर सिर रखकर उन्होंने आँखें मींच लीं और लेट गये।

बहुत देरतक मौन रहकर बोले—तुम मेरी इकलौती सन्तान हो, मैं तुम्हारा जी दुखाना नहीं चाहता। सारी सम्पत्ति मैं तुम्हें ही दे जाऊँगा, मगर यह काम अच्छा न होगा। मैं आशीर्वाद देता हूँ,—तुम सुखी होओ। पर इस बातका मुझे कम भरोसा है। अपनी लम्बी जिन्दगीमें मैंने बहुत-कुछ देखा-सुना है, खुद भी तीन बार ब्याह कर चुका हूँ। ऐसा मन लेकर कोई भी स्त्री दुनियामें कभी सुखी नहीं हो सकती। कुछ देर चुप रहकर फिर बोले—देखने-सुननेमें अच्छा रहेगा, तुम भी खुश होगी, यह सोचकर मैं दोनोंके ही नाम आधा-आधा लिखे जाता था; जानता था कि तुम और वह भिन्न नहीं हो। अच्छा, यह तो बता बेटी, किस लिए तू उसे देनेसे रोक रही है ?

कमलाने रोनेके-से स्वरमें कहा—सम्पत्ति मिल जानेसे फिर कोई मेरी तरफ मुँड़कर भी नहीं देखेगा।

"और सम्पत्ति न मिलनेपर ?"

"मेरे हाथमें रहेंगे।"

प्रिय बाबूने कहा—मैं काशीनाथको पहचानता हूँ, पर तुम नहीं पहचानती। वह ठीक अपने बापके ऐसा है। अगर वह तुम्हें देख नहीं सकता, तो सम्पत्ति

पानेपर भी नहीं देख सकेगा और सम्पत्ति न मिलनेपर भी उसमें कोई फर्क नहीं आनेका। और सुन बिटिया, क्या इस तरह पतिको बसमें रखा जा सकता है? जोर-जबरदस्तीसे जंगलके शेरको बसमें लाया जा सकता है, मगर जबरदस्ती एक छोटा-सा फूल भी विकसित नहीं किया जा सकता।

कुछ देर चुप रहकर वे फिर कहने लगे—भगवान्से प्रार्थना है तुम सफल होओ,—पर यह अच्छा तरीका नहीं है। अगर वह खुद तुम्हें न अपना सका, तो तुम्हारे पास रह ही क्या जायगा? जो रह जायगा, उसके लिए क्या आधी सम्पत्ति काफी नहीं है? और एक बात है, पतिको शरीर-मन-आत्मा पार्थिव-अपार्थिव सब-कुछ दिया जाता है—और जिसे अपना सर्वस्व दिया जाता है, उसे क्या अपनी आधी सम्पत्ति नहीं दी जा सकती? कमला, ऐसा मत कर, बिटिया, अगर कभी मालूम हो गया तो उसे बड़ा दुःख होगा।

कमलाने कोई जवाब नहीं दिया; प्रिय बाबूने भी फिर कोई बात नहीं पूछी। दोनों करीब आध घण्टेतक मौन बैठे रहे। अँधेरा होता आ रहा था, नौकरानी बत्ती जलाकर कमरेमें रख गई। कमला भी आँखें पोंछकर अपने कामसे चली गई।

दूसरे दिन प्रिय बाबूने वकीलको बुलाकर कहा—मैं अपना वसीयतनामा बदलूँगा।

वकीलने पूछा—क्या बदलवाना चाहते हैं?

"दामादका नाम काटकर मैं अपनी सारी सम्पत्ति लड़कीके नाम कर देना चाहता हूँ।"

"क्यों?"

"इस प्रश्नकी कोई जरूरत नहीं। जैसा कहता हूँ, वैसा लिख दीजिए।"

७

प्रिय बाबूके मरनेके बाद श्राद्ध-कर्म सम्पन्न होनेपर वसीयत देखकर काशीनाथ रंचमात्र भी दुःखित या विस्मित नहीं हुआ। संसारमें जो नित्य-प्रति होता रहता है, और जो होना चाहिए वही हुआ है—इसमें दुःखित और चकित होनेकी कौन-सी बात है? फिर भी दीवान साहबने काशीनाथसे एकान्तमें कहा—कुँवरजी,

बाबूसाहब ऐसी वसीयत कर जायँगे, यह तो मैंने स्वप्नमें भी नहीं सोचा था। पहले उन्होंने एक वसीयत लिखी थी, उसमें तो आपको और लड़कीको,—दोनों-को बराबर-बराबर दिया था। उसे क्यों बदल डाला, किसकी सलाहसे उनकी तबीयत बदल गई,—कुछ समझमें नहीं आता।

काशीनाथने जरा मुस्कराते हुए कहा—समझनेकी जरूरत ही क्या है? जिसकी सम्पत्ति थी उसे मिली; उसमें क्या तो मेरा और क्या आपका?

दीवानजी कुछ अप्रतिभसे होकर बोले—तो भी,—तो भी—

'तो भी'की तो इसमें कोई गुंजाइश ही नहीं। वास्तवमें देखा जाय तो इस सम्पत्तिपर मेरा अधिकार ही क्या है? बल्कि आश्चर्य तो तब होता जब मुझे वे आधी दे जाते। और फिर मुझे आधी दे जाना और उसे पूरी दे जाना—दोनों एक ही बात है। फर्क कहाँ है?

दीवानसाहब अब और भी अप्रतिभ हुए। सूखे मुँहसे बोले—नहीं नहीं, फर्क कुछ नहीं है,—मैं तो सिर्फ बाबू साहबकी बात कह रहा था। उनका अभि-प्राय मैं खूब जानता था, इसीसे मैंने यह बात कही।

"उन्होंने तो अपना कर्तव्य ही किया है। सोचिए तो जरा, स्त्रीके लिए तो पतिके सिवा और कोई गति ही नहीं; मगर पतिके लिए तो और भी गति हो सकती है। मैं गरीब ठहरा, एक साथ इतनी सम्पत्ति पा जानेका नतीजा बुरा भी हो सकता था। शायद इसी आशंकासे उन्होंने वसीयत बदलवा दी होगी।"

वृद्ध दीवान काशीनाथको हमेशासे निरा पण्डितमूर्ख ही समझते आये थे। उसके मुँहसे आज ऐसी बुद्धिमानीकी बात सुनकर धन्यवाद दिये बगैर उनकी तबीयत नहीं मानी। इस तरह बुजुर्ग दीवान उत्तरोत्तर काशीनाथकी विज्ञताका परिचय पाने लगे, और उधर कमला उत्तरोत्तर उतना ही अधिक अज्ञताका परिचय पाने लगी। दिनमें सौ-सौ बार वह अपनेसे पूछा करती—'ये हैं कैसे आदमी?' और विफल प्रश्न सौ-सौ ही बार मुँह लटकाये लौट आता और कहता—'समझमें नहीं आता!'

हजारों उद्योग और हजारों कोशिशें करनेपर भी कमला किसी भी तरह यह तय न कर पाई कि यह दो हाथ-पैरोंवाला आदमी आखिर है किस चीजका बना! उसने अपना मन अपने शरीरके भीतर रख छोड़ा है या उसे और कहीं

धरोहर रख दिया है ? इतना तो वह देखती ही है कि दुनिया जैसा करती है, उसके पति भी वैसा ही करते हैं—खाते हैं, सोते हैं, जमींदारीका काम देखते हैं, घरकी देख-भाल, सभी कुछ करते हैं। सब विषयोंमें दिलचस्पी लेते हैं, और साथ ही सभी विषयोंमे उदासीन भी हैं। इस बातको वह आजतक न समझ पाई कि आखिर उसके पतिको क्या अच्छा लगता है, किस चीजसे उन्हें ज्यादा प्रेम है। कमला जब कभी बीमार पड़ती है तो काशीनाथ रात-रातभर उसके पास बैठा-बैठा कोरी आँखों सबेरा कर देता है,—उसके चेहरेपर इतना विषाद, हृदयमें इतना स्नेह और इतना प्रेम बढ़ जाता है मानो वह फूटकर बाहर निकला आता हो। और फिर जहाँ बीमारी गई, जहाँ वह जरा चलने-फिरने लगी कि फिर तो सामने भी पड़ जाती है तो वह आँख उठाकर नहीं देखता, अपनी धुनमें अपने कामसे चला जाता है। कमलाने रूठकर दो-दो दिनतक बोलना बन्द करके देखा, कोई नतीजा नहीं। काशीनाथ पास आया और फिर लौट गया; न मनाया, न रोया और न बात की। फिर कमला बोलने लगी तो वह भी पहलेकी-सी मुस्कराहट और प्रसन्नताके साथ बोलने लगा! न कभी किसी दिन यही पूछा कि क्यों दो दिनतक बोलीं नहीं, क्यों नाराज थीं ? कमलाने कुछ दिन बाद अपने मन ही मन परामर्श करके ऐसा रुख अख्तियार कर लिया कि जैसे वह अपने उदासीन पतिको जताना चाहती है कि तुम मेरी परवाह नहीं करते, तो मैं भी परवाह नहीं करना जानती हूँ। और इतना तुम्हें प्यार भी नहीं करती कि तुम पैरोंसे कुचलते रहो और मैं तुम्हारे चरणोंसे लिपटी फिरूँ। पतिसे भेंट होते ही कमला मुँह फेरकर गम्भीरताके साथ अपने कामसे चली जाती है; मानो वह दिखाना चाहती है कि तुमपर मेहरबानी करके तुम्हें अपना पति बनाया है, इसका मतलब यह मत समझ लेना कि तुम्हारे ही पैरोंपर मेरे प्राण पड़े हैं और इसलिए भेंट होते ही मैं तुमसे मीठी मुस्कराहटके साथ प्यार-की बातें करूँगी। मेरे कामके समय सामने आ पड़ोगे, तो मैं भी नहीं देखूँगी।

कमला जब किसी नौकर या नौकरानीको फटकारने लगती और इत्तफाकसे उस वक्त काशीनाथके मुँहसे कोई बात निकल जाती तो उस बातको कमला सुनी-अनसुनी कर देती और उसी पहलेकी-सी रफ्तारमें फटकारती चली जाती; मानो वह कहती कि मेरे नौकर हैं, मेरी नौकरानियाँ हैं, मेरा मकान है; मेरी जो

तबीयत होगी वह कहूँगी, तुम बीचमें बिना पूछे मध्यस्थ बननेवाले कौन ?

मगर इससे क्या तृप्ति हो सकती है ? इस तरह क्या वासनाकी पूर्ति हो सकती है ? हाँ, तृप्ति हो सकती अगर काशीनाथको तिल-भर भी डिगा सकती। कोई कुछ भी करता रहे, वह अपने प्रशान्त गम्भीर चेहरेसे साफ-साफ समझा देता है कि मैं अपने आपमें निश्चल हूँ—सुमेरुकी चोटीकी तरह; उसे तिलमात्र भी विचलित करनेकी शक्ति तुममें नहीं है। जितना चाहो,—आँधी-मेह-तूफान उठाओ और जितना चाहो पेड़-पौधोंको तहस-नहस करती रहो, मुझे तुम टससे मस नहीं कर सकतीं।

अच्छा, कमला क्या प्रेम नहीं करती ? करती है; पर वह प्रेम अनन्त अथाह नहीं है। मानो वह लकीर खींचकर कहना चाहती है—तुम इसके बाहर मत जाओ। जाओगे, तो मुझसे सहा नहीं जायगा। सम्भव है; तब भी मैं प्रेम करूँगी, पर तुम्हारे सम्मानकी रक्षा नहीं करूँगी।

एक दिन बुढ़िया नौकरानीके सामने उसने अपने मनका दुखड़ा रोया—बाबूजी मुझे एक जानवरके हाथ सौंप गये हैं।

"सो कैसे बेटी ?"

"मुझसे पूछ रही हो कैसे ? तुम सबोंने मिलकर हाथ-पैर बाँधके कुँएमें क्यों नहीं डाल दिया ?"

"ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए बेटी !"

"क्यों नहीं कहनी चाहिए ? तुम लोग जिस कामको कर सकीं उसे मैं एक बार मुँहसे भी नहीं कह सकती ?"

"नहीं नहीं; सो बात नहीं। वे तो बड़े अच्छे आदमी हैं; पर हाँ, जरा कुछ पागलपनका छींटा जरूर पड़ गया है। बापमें भी थोड़ा-थोड़ा था, इसीसे कुँवरजीमें भी—"

"तू चुप रह। पागलकी बात मुँहसे मत निकाल। बापके पागल होनेपर बेटा भी पागल नहीं हो जाता। पागल बिलकुल नहीं हैं, मुझे जान-बूझकर सताते हैं।"

पति पागल हैं, यह स्वीकार करते हुए कमलाके हृदयमें चोट लगी।

आज तीन दिन हो गये, काशीनाथका पता नहीं है। दो दिन तो कमलाने जान-बूझकर खबर-सुध नहीं ली, पर तीसरे दिन उसने घबराकर बाहर दरबानसे

कहला भेजा—बाबू दो दिनसे घर नहीं आये, तुम लोगोंने भी कोई खबर नहीं ली, तो फिर तुम सब हो किसलिए ?

दरबान सोचने लगा—वाह, यह भी खूब हैं ! कौन कहाँ गया-आया, इसकी खबर हम कैसे रख सकते हैं ! बादमें खजांचीसे मालूम हुआ कि कुँवरजी तीन हजार रुपये लेकर कहीं बाहर चले गये हैं। कहाँ गये हैं और कब लौटेंगे, सो किसीसे नहीं कह गये।

कमला कुछ देरतक तो माथेपर हाथ रखे बैठी रही; फिर अपने पिताके वकील साहबको बुलाकर बोली—मेरी जमींदारी वगैरहका काम सँभाल सके, ऐसे किसी योग्य आदमीको, एक हफ्तेके अन्दर, बहाल कीजिए। जितनी भी तनखा लगे, मैं दूँगी।

८

काशीनाथ कलकत्ते पहुँचा और दिन-भर वर्षामें भींगकर घुटुअन पानी और कीचड़ पार करता हुआ शामतक किसी कदर एक छोटी-सी पतली गलीके भीतर एक मामूली इकमंजिले मकानमें दाखिल हुआ। उसके हाथोंमें दो शीशी दवा, एक डिब्बा बिस्कुट और चद्दरमें बेदाना आदि कुछ फल बँधे हुए थे।

इस मकानके एक कमरेमें खाटपर एक रोगी पड़ा था और सिरहानेके पास बैठी हुई एक स्त्री उसके माथेपर हाथ फेर रही थी। काशीनाथके घुसते ही उसने कहा—काशी भइया, इतनी बरसामें भींगते हुए क्यों चले आये ? कहीं खड़े क्यों नहीं हो गये ?

"सो कैसे होता बहन ? पानीमें भींगनेसे उतना नुकसान नहीं हुआ जितना शायद खड़े होनेसे हो सकता था।"

बिन्दुने सोच-समझकर देखा, काशी भइयाकी बात झूठी नहीं है, इसीसे वह चुप रह गई।

पिछले कई वर्षोंसे बिन्दु जो दुःख भोगती रही है उसे सिर्फ वही जानती है। हम लोगोंने उसे उसके मायकेमें ही देखा था, फिर नहीं देखा। अब जरा उसके बारेमें भी कुछ कह देना चाहिए। जिस दिन वह जमींदारकी लड़कीको देखने जानेकी सारी तैयारियाँ करके भी नहीं जा पाई, उसके दूसरे ही दिन सहसा अपने

ससुर गोपाल बाबूकी कठिन बीमारीका समाचार पाकर उसे ससुराल चला आना पड़ा। उसने आकर देखा कि उसके ससुर सचमुच ही बहुत ज्यादा बीमार हैं। सबने मिलकर यथाशक्ति इलाज कराया, पर गोपाल बाबूको किसी भी तरह बचाया नहीं जा सका। बीमारी बहुत ज्यादा बढ़ जानेपर गोपाल बाबूने कहा— छोटी बहूको जरा मेरे पास बुला लाओ,—उसे एक बार देखूँगा।

छोटी बहू हमारी बिन्दुवासिनी ही है। मरनेके दो-एक दिन पहले गोपाल बाबूने बिन्दुसे कहा—बेटी, यह लो चाबी। उस बाक्समें जो कुछ है, सब तुम्हें देता हूँ।

बिन्दुने हाथ पसारकर उसे ले लिया। दूसरी बहुओंने समझा, बुढ़ऊ मरते वक्त सब कुछ छोटी बहूको ही दे गये! एक बात और है। गोपाल बाबूने बीमारीकी हालतमें ही एक दिन अपने चारों लड़कोंको पास बुलाकर कहा था— देखो, सुनो, तुम लोगोंमें भाई-भाईमें जरा भी मेल नहीं है, और तुम्हारी माँ भी जिन्दा नहीं है, इसलिए मेरे मरनेके बाद तुम लोग एक गिरस्तीमें मत रहना। झूठमूठ झगड़ा-फसाद करनेके पहले अभी जो कुछ मेल-मुरौवत बाकी है, उसीको लेकर अलग हो जाना। जो कुछ मैं छोड़ जा रहा हूँ, उसके सिवाय और थोड़ा-थोड़ा कमाते रहनेसे आसानीसे तुम लोगोंका निर्वाह हो जायगा।

पिताके मरनेके बाद चारों भाई न्यारे हो गये। बिन्दुने एक दिन वह बाक्स खोला तो उसमें एक 'रामायण' और एक 'महाभारत'के सिवा और कुछ नहीं निकला! आशासे निराशा होनेपर भी बिन्दुने स्वर्गीय ससुरका दान सिर-माथे चढ़ा लिया। उसने अस्फुट स्वरमें कहा कि यह उनका स्नेहका दान है,—यही हमारे लिए रतन है।

बिन्दुके कुछ दिन तो आरामसे बीते, उसके बाद विपत्तियोंका सूत्रपात्र हुआ। उसके पति योगेश बाबू बीमार पड़ गये। उसने अपने शरीरकी परवाह न करके जी-जानसे पतिकी सेवा-शुश्रूषा की, जमीन रेहन रखकर इलाज कराया, पर किसी भी तरह उन्हें आराम न हुआ। गाँवके कुछ पड़ोसियोंने सलाह दी कि कलकत्ते ले जाकर इलाज कराना चाहिए। तब बिन्दु, जो कुछ भी गहना-गुरिया उसके पास था, सब बेचकर पतिको कलकत्ते ले आई। यहाँ भी बहुत तरहका इलाज कराया और उसमें जो थोड़ी-सी जमीन बाकी बची थी, क्रमशः

सब रेहन पड़ गई। मगर रोग जरा भी इधरसे उधर नहीं हुआ। रुपयोंके अभावमें अब अच्छी तरह इलाज करानेका रास्ता भी रुक गया। बिन्दुने अपने बड़े जेठको सब हाल लिख भेजा, पर कोई नतीजा नहीं निकला;—उन्होंने जवाबतक नहीं दिया। फिर उसने उनसे छोटे दोनों जेठोंको लिखा, पर उन्होंने भी अपने बड़े भाईका आदर्श सामने रखकर मौन साध लिया। बिन्दु समझ गई कि अब या तो उपास करने पड़ेंगे और या जहर खाकर मरना पड़ेगा।

स्त्रीका चेहरा देखकर ही योगेश बाबू सब समझ जाया करते थे। एक दिन बिन्दुको उन्होंने अपने पास बिठाकर बड़े स्नेहसे हाथ पकड़कर कहा—बिन्दु मुझे गाँव ले चलो; मरना ही है तो वहीं मरेंगे,—यहाँ मरनेपर तो उठानेवाला भी कोई न मिलेगा।

अब बिन्दुने देखा कि मरना ही निश्चित है, क्योंकि और कोई उपाय ही नहीं है;—पतिको गाँव ले जानेका भी कोई उपाय नहीं। मगर पतिको ऐसी हालतमें छोड़कर वह मर भी कैसे सकती ? और अगर मरना ही है, तो फिर लज्जा-शरम करके ही क्या होगा ? बहुत सोच-विचार और ऊहापोहके बाद लज्जा-शरमको धता बताकर उसने काशीनाथको चिट्ठी दी और उसमें सब हाल लिख दिया। बादकी घटना आप लोगोंको मालूम ही है।

आते वक्त काशीनाथ काफी रुपया साथ लाया था। उस रुपयेसे उसने शहरके अच्छेसे अच्छे डाक्टरोंसे राय ली और सभीने यह राय दी कि आब-हवा बदले बिना आराम नहीं पड़ सकता। काशीनाथ सबको लेकर वैद्यनाथ पहुँचा। वहाँ दो महीने रहकर देखा तो सबकी समझमें आ गया कि इस बार तो योगेश बाबू बच गये। फिर भी वहाँसे लौटनेमें अभी देरी थी। इसलिए उन्हें वहीं छोड़कर काशीनाथ घर लौट आया।

सबेरे ही कमलासे भेंट होनेपर उसने पूछा—कब आये ?

"रातको।"

कमला अपने कामसे चली गई। काशीनाथ बाहर निकलकर कचहरीमें पहुँचा। बहुत दिन बाद अचानक बाबूको देखकर सब कर्मचारी एक साथ उठ खड़े हुए; सिर्फ एक साहबी पोशाक-धारी युवक अपने काममें लगा हुआ कुरसीपर ही बैठा रहा। एक आगन्तुकको देखकर उसके कर्मचारियोंने जो सम्मान दिया,

नये बाबूको शायद वह दिखाई नहीं दिया। काशीनाथ अपने हाथसे एक आराम-कुरसी खींचकर उसपर बैठ गये। यह जो नया मैनेजर बनकर आया है उसका नाम है विजयकिशोर दास। कलकत्तेमें बी० ए० पास किया है और बहुत ही कार्यदक्ष आदमी है; इसीलिए वकील विनोद बाबूने उसे मैनेजरके पदपर नियुक्त किया है। मैनेजरने बहुत देर बाद काशीनाथकी तरफ देखकर कहा—आप किसी कामसे आये हैं?

"नहीं, काम कुछ नहीं, सिर्फ काम-काज देखने आया हूँ।"

अब दीवान साहबने उठकर कहा—आप हमारे जमाई-साहब हैं।

विजय बाबूने उठकर उनसे प्रीति-सम्भाषण किया; इतनेमें एक नौकरने आकर विजय बाबूसे कहा—भीतर आपको मालकिन बुला रही हैं।

विजय बाबूके चले जानेपर काशीनाथने दीवान साहबसे पूछा—ये कौन हैं?

"नये मैनेजर।"

"किसने रखा है?"

"बिटियाने।"

"क्यों?"

"शायद काम-काज ठीक हो नहीं रहा था इसलिए।"

"अभी कहाँ गये हैं?"

"भीतर कोठीमें।"

काशीनाथ आगे और कुछ न पूछकर भीतर चला गया; देखा कि एक कमरेमें परदेके सामने विजय बाबू खड़े हैं और उसके पीछे कोई मृदु स्वरमें बात कर रहा है। किसकी बात हो रही है यह काशीनाथ समझ गया; परन्तु बिना कुछ कहे-सुने और बिना उधर देखे ही वह अपनी धुनमें चला गया।

दोपहरको कमलाके साथ फिर उसकी मुलाकात हुई। कमलाने गम्भीरताके साथ पूछा—तबीयत तो ठीक है? काशीनाथने उसी तरह गरदन हिलाकर जवाब दिया—हाँ, ठीक है।

कमला और कुछ न कहकर चली गई। खड़े होकर बातचीत और गपशप करनेकी अब उसे फुरसत नहीं है, हजारों काम पड़े हैं; खासकर जमींदारीका भार अपने ऊपर ले लेनेसे अब उसे दम लेनेकी फुरसत नहीं है। एक दिन सबेरे

काशीनाथने मैनेजर साहबको बुलवाया। नौकरके मारफत मैनेजरने जवाब दिया—अभी फ़ुरसत नहीं है, फ़ुरसत मिलते ही आऊँगा! तब काशीनाथने स्वयं ही कचहरी जाकर और विजय बाबूको अलग बुलाकर कहा—आपको फ़ुरसत नहीं थी, इसलिए मैं ही चला आया। आज मुझे पाँच सौ रुपये चाहिए; फ़ुरसत मिलते ही ऊपर भिजवा दीजिएगा।

"किसलिए चाहिए?"

"यह जाननेकी आपको जरूरत नहीं।"

"माना कि नहीं है; मगर मालिककी आज्ञाके बिना मैं कैसे दे सकता हूँ?"

काशीनाथ समझ गया कि बात कुछ और ही हो गई है। बोला—मेरा कहना ही शायद काफी होगा। दूसरी आज्ञाकी भी जरूरत है क्या?

विजय बाबूने दृढ़ताके साथ कहा—हाँ, है। जिस-तिसको रुपया देनेकी मनाई है।

काशीनाथने कमलासे भेंट करके कहा—तुम अपने नये आदमीको अलग कर दो।

"किसे?"

"जो तुम्हारा नया मैनेजर बनकर आया है।"

"क्यों, उसने क्या कसूर किया है?"

"मेरे साथ अच्छा सलूक नहीं किया।"

"क्या किया है?"

"मैंने बुलाया था सो खुद न आकर नौकरसे कहला भेजा—मुझे फ़ुरसत नहीं, जब होगी तब आऊँगा।"

कमलाने हँसते हुए कहा—हो सकता है कि फ़ुरसत न हो। फ़ुरसत बिना मिलने कैसे आता?

काशीनाथने स्त्रीके मुँहकी तरफ देखते हुए कहा—मान लिया कि फ़ुरसत नहीं थी इसलिए नहीं आ सका, किन्तु जब मैंने खुद जाकर रुपये माँगे तो कहता है कि मालिककी आज्ञा बिना नहीं दे सकता।

कमलाने और भी मुस्कराहटके साथ कहा—कितने रुपये माँगे थे?

"पाँच सौ।"

"नहीं दिये ?"

"नहीं। तुमने क्या मुझे रुपये देनेकी मनाई कर दी है ?"

"हाँ, इस तरह रुपये उड़ा देना मैं पसन्द नहीं करती।"

काशीनाथको,—पत्थरका काशीनाथ होनेपर भी, मार्मिक दुःख हुआ। ऐसा व्यवहार या ऐसी बातें उसने पहिले कभी नहीं सुनीं। अत्यन्त क्षुब्ध होकर उसने कहा—मुझे देना क्या उड़ा देना है ?

"किसी भी तरह हो, नष्ट करनेका नाम ही उड़ा देना है।"

"जरूरतसे खर्च करनेका नाम नष्ट करना नहीं है।"

"कौन-सी जरूरत है ?"

"किसीको देना है।"

"देना तो है, पर पाओगे कहाँ ? स्वयं तुम्हारे पास हो तो दे दो जाकर—मैं मना नहीं करूँगी।"

काशीनाथ चुप हो गया, ये शब्द उसके कानोंमें अग्नि-शलाकाकी तरह घुसे। बाहर आकर उसने अपनी घड़ी और अँगूठी आदि बेचकर पाँच सौ रुपये बैद्यनाथ-को रवाना कर दिये और चिट्ठीके नीचे लिख दिया—अब मत माँगना बहन, मेरे पास अब कुछ नहीं रहा।

उस दिनसे काशीनाथ फिर भीतर नहीं गया; कमलाने भी कोई पूछ-ताछ नहीं की। इसी तरह कई दिन बीत गये। एक दिन नौकरने आकर कहा—आपसे एक ब्राह्मण मिलना चाहता है।

दूसरे ही क्षण काशीनाथने आश्चर्यके साथ देखा—एक वृद्ध ब्राह्मण हाथमें जनेऊ थामे पास आकर खड़ा है। बोला, आप महान् व्यक्ति हैं, ब्राह्मणका सर्वस्व मत छीनिए।

काशीनाथने डरते हुए कहा—क्या हुआ है ?

ब्राह्मणने कहा—आपको परमात्माने बहुत दिया है, पर मेरे पास उतनी-सी जमीनके सिवा और कुछ नहीं है; उसे आप मत छुड़ाइए। यह कहते-कहते ब्राह्मण रोने लगा।

काशीनाथने व्यस्त होकर ब्राह्मणका हाथ पकड़कर उसे अपने पास बिठा लिया और पूछा—पूरी बात साफ-साफ कहो। ब्राह्मणने रोते-रोते कहा—आप

धर्मात्मा आदमी हैं, शपथ करके कहिए तो सही कि क्षेत्रपालवाली जमीन मेरी नहीं है ?

"कौन कहता है कि आपकी नहीं है ?"

"तो फिर विजय बाबूने, आपके नये मैनेजरने,—मेरे नाम दावा क्यों दायर किया है ?"

"दावा किया है ? मुझे मालूम नहीं ।"

समन्स दिखाकर ब्राह्मण कहने लगा—जब मुकदमा किया गया है तो मैं भी मुकदमा लड़ूँगा और आपको गवाह बनाऊँगा । मैं गरीब हूँ, आपके साथ लड़ना मेरे लिए शोभा नहीं देता; फिर भी, भिखारी होनेसे अपनी सम्पत्ति बिना उज्र किये नहीं छोड़ूँगा ।

ब्राह्मणको क्रुद्ध होकर चले जाते देख काशीनाथने हाथ पकड़कर बिठा लिया और कहा—जिससे आपका भला हो उसके लिए मैं कोशिश करूँगा; फिर आपकी जो इच्छा कीजिएगा ।

काशीनाथने ब्राह्मणको विदा करके विजय बाबूको पुकारकर कहा—वह जमीन तो अपनी नहीं है, फिर ब्राह्मणको व्यर्थ ही क्यों सताया जा रहा है ?

"मालिकका हुक्म है ।"

काशीनाथने क्रोधित होकर कहा—मालिकने क्या दूसरेकी चीज छीन लेना सिखाया है ?

"वह हम लोगोंकी चीज है ।"

"नहीं, हमारी नहीं है ।"

विजय बाबू कुछ देरतक चुप रहे, फिर बोले—मैं तो केवल नौकर हूँ, जैसी आज्ञा हुई है वैसा ही किया है और करूँगा ।

यह बात कमलासे कहनेमें काशीनाथको शर्म मालूम होती थी, फिर भी उसने कहा—वह जमीन तुम्हारी नहीं है । ब्राह्मणका ब्रह्म-स्व मत छीनो ।

"छीन रही हूँ, यह किसने कहा ?"

"किसीने भी कहा हो,—वह जमीन तुम्हारी नहीं है । विजय बाबूको मना कर दो कि वे झूठा मुकदमा न चलावें ।"

कमलाने नाखुश होकर कहा—विजय बाबू कामके आदमी हैं । वे अपने

कामको समझते हैं। तुम्हें उनके काममें दखल देनेकी जरूरत नहीं।

कई दिन बाद मुकदमेकी पेशी हुई। गवाहके कटघरेमें खड़े होकर काशी-नाथने कहा—मैं अपने ससुर स्वर्गीय प्रियनाथ बाबूके समयसे जमींदारीकी देख-भाल करता आ रहा हूँ और उनके बाद भी मैंने स्वयं बहुत दिनोंतक काम सँभाला है,—मुझे मालूम है कि वह जमीन कमला देवीकी नहीं है।

विजय बाबू मुकदमा हारकर सूखा-सा मुँह लेकर घर लौट आये। प्रतिवादी भी दोनों हाथ उठाकर काशीनाथको आशीर्वाद देकर अपने घर गया।

९

परदेके सामने खड़े होकर विजय बाबूने मुकदमेकी विशद व्याख्या करके अन्तमें अपनी टीका-टिप्पणी और राय जाहिर करते हुए कहा—सिर्फ कुँअर साहबकी वजहसे ही हम लोग मुकदमा हार गये। इसपर परदेके भीतर एकगुना कमल दस गुना होकर फूलने लगा। बहुत देर बाद भीतरसे कमलाने कहा—आप भीतर आइए, बहुत-सी बातें करनी हैं। विजय बाबूने भीतर प्रवेश किया। दोनोंमें बहुत देरतक धीरे-धीरे बातें होती रहीं। इसके बाद विजय बाबू बाहर चले आये।

आज बहुत दिनों बाद काशीनाथके भोजन करते समय कमला आ बैठी। अब उसकी पहले-जैसी उग्र-मूर्ति नहीं थी, बल्कि पूर्ण शान्त और स्तब्ध थी। कुछ देर बाद कमलाने कहा—घरके भेदी विभीषणके कारण सोनेकी लंकापुरी भस्म हो गई थी,—जानते हो? खाते-खाते काशीनाथने उत्तर दिया—जानता हूँ।

कमलाने कहा—जानोगे क्यों नहीं, वह भी तो दूसरेके ही अन्नसे आदमी हुआ था!

काशीनाथने कुछ भी जवाब नहीं दिया।

कमलाने कुछ देर चुप रहकर फिर कहा—इसीसे सोचती हूँ कि जो हमेशासे दूसरोंकी रोटियाँ खाकर इतना बड़ा हुआ है,—अब भी जिसके लिए दूसरेकी रोटियाँ खाये बिना लंघन करनेकी नौबत आ सकती है, उसे सच बात कहनेकी हविस क्यों, और इतना अहंकार किस बिरतेपर?

काशीनाथ चुपचाप एकके बाद एक कौर उठाकर मुँहमें देने लगे।

"कसाई भी जिसका खाता है उसकी गरदनपर छुरी चलानेमें हिचकता है।"

"कमला!"

"जो अपनी स्त्रीके अन्नसे जिन्दगी बसर करता है, उसको इतना तेज शोभा नहीं देता। दिनपर दिन तुम्हारा जैसा व्यवहार होता चला जा रहा है उसे देखते हुए यदि आँखोंका लिहाज न होता तो—"

काशीनाथने हँसते हुए कहा—घरसे निकाल बाहर कर देती?

"हाँ, कर ही देती।"

आधी खाई हुई थाली अलग हटाकर काशीनाथने कमलाकी तरफ एकटक देखते हुए कहा—कमला, मैं पहले कभी तुमपर गुस्सा नहीं हुआ, कभी तुमसे मैंने कोई कड़ी बात नहीं कही; मगर तुमने आज जो बात कही है, इससे पहले ऐसी बात शायद किसीने भी मुझसे नहीं कही। आजसे मैं अब तुम्हारी रोटी नहीं खाऊँगा। देखो, इससे अगर तुम सुखी हो सको। इतना कहकर काशीनाथ उठकर खड़ा हो गया। कमला भी गर्वके साथ खड़ी हो गई और बोली—अगर सत्यवादी हो, अगर आदमी हो तो अपनी प्रतिज्ञा पूरी करना।

"जरूर करूँगा, पर तुमने जो बात कही, वह तुम्हारी ही चिर-शत्रु होकर रहेगी। मैंने तुम्हें क्षमा कर दिया, पर जगदीश्वर क्या तुम्हें क्षमा करेंगे?"

कमला और भी जल उठी—तुम्हारे शापसे मेरा कुछ भी नहीं बिगड़ेगा।

"ऐसा ही हो। भगवान् जानते हैं, मैंने तुम्हें शाप नहीं दिया, बल्कि आशीर्वाद देता हूँ कि धर्ममें मति रखती हुई सुखी रहो।"

बाहर आकर काशीनाथने व्याकरण, साहित्य, दर्शन, स्मृति, सबको एक-एक करके फाड़कर फेंक दिया। नौकरोंको बुलाकर अपना जो कुछ था सब बाँट दिया। उसके बाद रातको कमलाके कमरेके दरवाजेपर आघात करके पुकारा—कमला!

कमला जग रही थी, मगर उसने जवाब नहीं दिया। किवाड़ खुले हुए थे, काशीनाथने उन्हें ठेलकर भीतर प्रवेश किया, देखा कि कमला आँखें मींचे पलंग-पर पड़ी है। पास बैठकर माथेपर हाथ फेरते हुए काशीनाथने फिर पुकारा—'कमला!' पर कोई जवाब नहीं। 'जाते समय तुम्हें आशीर्वाद दिये जाता हूँ' कहकर काशीनाथ चुपचाप बाहर निकल गया।

काशीनाथके चले जानेपर कमला बिस्तरसे उठकर खिड़कीके पास जाकर बैठ गई। बैठे-बैठे सबेरा होते देख वह फिर बिस्तरपर आकर लेट गई। जब नींद खुली, देखा कि काफी दिन चढ़ आया है और घर-भरमें शोर-गुल मचा हुआ है। पूरी जगने भी न पाई थी कि एक नौकरानी दौड़ी आई और चिल्लाकर बोली—गजब हो गया जीजी, कुँवरजीका किसीने खून कर डाला!

किसीपर भरी-कड़ाही खौलता हुआ तेल डाल देनेपर वह जिस तरह छटपटा उठता है, कमला ठीक उसी तरह छटपटाती हुई नीचे उतर आई और बोली—एकदम खून कर डाला?

किसीने जवाब दिया—हाँ, एकदम।

लगभग वस्त्र-हीन दशामें ही कमला जब बाहरवाले कमरेमें पहुँची तो देखा कि खूनसे लथपथ चेतना-हीन काशीनाथ एक शोफेपर पड़ा है; तमाम देहपर धूल और खून जम गया है; नाक, मुँह और आँखोंसे खून निकल-निकलकर वहाँका वहीं सूख गया है। कमला चिल्ला उठी और मूर्च्छित होकर वहीं गिर पड़ी।

सारे गाँवमें बात फैल गई कि जमींदारके जमाई अँधेरी रातमें अकेले कहीं जा रहे थे, रास्तेमें किसीने उनका खून कर डाला।

दो दिन बाद जब काशीनाथको होश आया तो पुलिसके साहबने पूछा—बाबू, किसने आपकी यह दशा की?

काशीनाथने ऊपरकी ओर इशारा करके कहा—उन्होंने।

वृद्ध नायब साहब वहीं खड़े थे, उनकी आँखोंसे आँसू टपकने लगे। साहबने फिर पूछा—बाबू, उन लोगोंको क्या आप पहचान नहीं सके?

काशीनाथने अस्फुट स्वरमें कहा—पहचानता हूँ। साहबने व्यग्र होकर पूछा—कौन थे वे लोग?

काशीनाथने जरा मौन रहकर कहा—मैंने गलत कहा है, मैं उन्हें नहीं पहचानता।

साहबने और भी दो-चार बार पूछा, मगर कोई नतीजा नहीं निकला। काशीनाथने दूसरी बात कही ही नहीं। दूसरे रोज नायबको बुलाकर कहा—वैद्यनाथमें मेरी बहन बिन्दुवासिनी है, उसे एक बार देखना चाहता हूँ; आप किसीको भेजकर बुला लीजिए।

तीन दिनके बाद बिन्दुवासिनी और योगेश बाबू आ पहुँचे। बिन्दु जरा कड़े जीकी स्त्री थी, कमलाकी तरह नहीं; इसीसे न तो वह चिल्लाई और न मूर्च्छित ही हुई। सिर्फ आँखोंके आँसू पोंछकर भर्राई हुई आवाजसे बोली—काशी भइया, किसने यह दशा की?

"कैसे मालूम हो?"

"किसीपर सन्देह होता है?"

"उस बातको मत पूछो, बहन।"

बिन्दु चुपचाप काशीनाथके चेहरेकी तरफ देखती रही।

सभी जानते थे कि काशीनाथ इतनी भारी चोटको झेलकर बच नहीं सकेगा। मृत्यु भी क्रमशः नजदीक आने लगी। आज बहुत रात बीते ज्वरके प्रकोपमें छटपटाता हुआ काशीनाथ चिल्ला उठा—बताओ कमला, यह काम तुमने तो नहीं किया?

बिन्दुने भइयाके मुँहके पास मुँह ले जाकर पूछा—यह क्या कह रहे हो भइया?

काशीनाथने बिन्दुको भ्रमसे कमला समझकर उसके गलेमें बाँहें डालकर करुण कंठसे फिर कहा—मैं मरकर भी सुखी नहीं हो सकता कमला, सिर्फ एक बार कह दो कि यह काम तुम्हारे द्वारा नहीं हुआ।

* * *

१०

होशमें बेहोशीमें, तन्द्रासे आच्छन्न अवस्थामें, कमलाके दो-तीन दिन बीत गये। उसके बारेमें डाक्टरको भीतर ही भीतर बड़ी आशंका थी, इसीसे उनके कहे मुताबिक बहुत ही सावधानीसे लोग उसे घेरे बैठे थे। आज लगातार दो दिनकी कोशिश और सेवा-शुश्रूषाके बाद होश आया और उसे उठाकर बिठाया गया।

अच्छी तरह आँखें खोलकर कमलाने देखा कि अबतक अपनी गोदमें उसका सिर रखे जो सिरहाने बैठी है, वह बिलकुल अपरिचित है। पूछा—तुम कौन हो?

अपरिचिताने कहा—मैं बिन्दु हूँ, तुम्हारे पतिकी बहन।

कमला बहुत देरतक चुपचाप उसके चेहरेकी तरफ देखती रही, उसके बाद हाथके इशारेसे कमरेमें बैठे हुए और सब लोगोंको बाहर चले जानेकी आज्ञा देकर धीरेसे बोली—मैं कितनी देरसे इस तरह बेहोश पड़ी हूँ ननदजी ?

बिन्दुने कहा—परसों सबेरे बेहोश होकर गिर पड़ी थीं भाभी, इस बीचमें फिर तुम्हें होश नहीं आया।

"परसों !" कमला चौंककर रह गई। उसके बाद सिर झुकाए स्तब्ध होकर बैठी रही। बहुत देरतक उसके शरीरमें किसी प्रकारकी हरकत न पाकर बिन्दुने शंकित चित्तसे उसका दाहिना हाथ अपने हाथमें लेते हुए पुकारा—भाभी !

कमलाने मुँह नहीं उठाया, मगर जवाब दिया। बोली—डरो मत ननदजी, अब मैं बेहोश नहीं होऊँगी।

बिन्दु समझ गई कि वह भीतर ही भीतर अपनेको होशमें रखनेकी चुपचाप भरपूर कोशिश कर रही है। इसीसे बिन्दु धीरज धरकर चुप बैठी रही। और भी कुछ देर इस तरह बैठे रहनेके बाद कमला बात करने लगी। बोली—तुम जो मुझे लेकर दो दिनसे यों ही बैठी हो ननदजी, सो यह तुम्हारी प्रवृत्ति मेरी सेवा करनेकी ओर कैसे हुई ? मैं स्वयं तो कभी ऐसा नहीं कर सकती।

बिन्दुने उसकी बातोंको ठीकसे समझा नहीं; कहा—क्यों, प्रवृत्ति क्यों नहीं होगी भाभी, तुम तो कोई गैर नहीं हो ? हम लोगोंकी जान-पहचान नहीं थी, फिर भी भइयाकी तरह तुम भी तो मेरी अपनी हो। उनकी तरह तुम्हारी सेवा करना भी तो मेरा काम है। भाभी, तुम्हें तो मालूम नहीं, पर जबसे आई हूँ तब-से मेरे दो दिन किस तरह बीते हैं सो भगवान् ही जानते हैं। एक बार भइयाके कमरेमें और एक बार तुम्हारेमें—जब भइयाके पास जाती तो तुम्हारे लिए जी छटपटाता, और जब तुम्हारे पास आ जाती तो भइयाके लिए जी घबराता। आज शामसे उनकी तबीयत जरा कुछ अच्छी है, उन्हें आरामसे सोते देख मैं तुम्हारे पास जरा स्थिर होकर बैठ सकी हूँ। इस संकटसे भइया बच जायँगे, किसीको ऐसी उम्मीद थोड़ी ही थी भाभी !

कमला पूछ उठी—बच गये हैं !

बिन्दुने गरदन हिलाकर कहा—हाँ, बचेंगे क्यों नहीं ? डाक्टरने कहा है, अब डरनेकी कोई बात नहीं; बुखार घट गया है।

कमलाका चेहरा अकस्मात् चमककर फिर मुरदेकी तरह विवर्ण हो गया। एक बार सिरसे लेकर पैरतक उसका सारा शरीर काँप उठा; और दूसरे ही क्षण बेहोश होकर वह बिन्दुकी गोदमें लुढ़क पड़ी।

बिन्दुने शोर-गुल मचाकर किसीको भी नहीं बुलाया,—बल्कि उसका सिर अपनी गोदमें रखकर वह चुपचाप पंखेसे बयार करने लगी। इस स्त्रीमें स्वाभाविक धैर्य कितना अधिक है, इसकी परीक्षा तो उसके पतिकी बीमारीमें ही हो चुकी थी। मृत्यु उसके पतिके सिरहाने आकर बैठ गई थी, फिर भी वह उसे विचलित नहीं कर सकी थी। बिन्दु अब कमलाके लिए भी क्यों विचलित होने लगी! कुछ देर बाद होशमें आकर कमलाने आँखें खोलीं और देखा कि मैं कहाँ हूँ। इसके बाद फिर बिन्दुकी गोदमें औंधी पड़कर जी-जानसे अपनी छाती मसोसकर रोने लगी।

वह क्रन्दन इतना गाढ़ा था और इतना भारी था कि बिन्दुकी गोदमें ही सूखकर जम जाने लगा, उसकी एक छोटी-सी तरंग भी बाहर किसीके कान-तक नहीं पहुँची। बाहर निर्जन रात्रिका अन्धकार चुपचाप गाढ़तर होने लगा और भीतर सिर्फ इसी एक स्वल्पालोकित कमरेमें इन दो तरुणी रमणियोंमेंसे एक अपने विदीर्ण वक्षःस्थलकी सम्पूर्ण ज्वाला दूसरीकी गम्भीर-शान्त गोदमें चुपचाप उड़ेलने लगी।

क्रमशः शान्त होकर कमलाने अपने पतिके बारेमें बहुत-सी बातें पूछीं, मगर, उसने खुद जाकर उन्हें देख आनेकी इच्छा क्यों नहीं प्रकट की, यह बहुत-कुछ सोच-विचार करनेपर भी बिन्दु न समझ सकी। उसने एक बार यह भी सोचनेकी कोशिश की कि शायद बड़े आदमियोंके यहाँकी ऐसी ही शिक्षा और संस्कार होंगे। सेवा-शुश्रूषाका भार नौकर-चाकरोंके ऊपर छोड़कर बाहरसे खबर लेते रहनेका ही इनमें नियम होगा। सहसा कमलाने पूछा—अच्छा ननदजी, तुम्हारे भइयाने होशमें आनेपर मेरे विषयमें एक बार भी कुछ नहीं पूछा?

"एक बार पूछा था", इतना कहकर बिन्दु सहसा चुप हो गई। कमलाने इसे ताड़ लिया किन्तु कोई प्रश्न न करके वह सिर्फ उत्सुकताके साथ व्याकुल दृष्टिसे बिन्दुके मुँहकी तरफ देखती रही।

बिन्दु कुछ देरतक चुप रहकर बोली—होश आनेपर भइयाने मुझे तुम

समझकर, गलेमें बाँह डालकर, एक बार जोरसे चिल्लाकर पूछा था,—बताओ कमला, यह काम तुमने तो नहीं किया ? मैं मरकर भी सुखी नहीं हो सकता कमला, सिर्फ एक बार कह दो कि यह काम तुम्हारे द्वारा नहीं हुआ !

कमलाने साँस रोककर कहा—उसके बाद ?

बिन्दुने कहा—मुझे तो मालूम नहीं भाभी, किस कामके लिए वे पूछ रहे थे।

मैं जानती हूँ ननदजी, वे क्या जानना चाहते हैं। यह कहकर कमला एकदम सीधी होकर बैठ गई।

बिन्दुने कमलाका हाथ पकड़ लिया और कहा—तुम उस कमरेमें मत जाओ भाभी।

"क्यों, क्यों नहीं जाऊँ ?"

"डाक्टरने मना कर दिया है, तुम्हारे जानेसे हानि हो सकती है।"

मेरी हानि मुझसे ज्यादा डाक्टर नहीं समझ सकता ननदजी, मैं उन्हींके पास जाती हूँ। नींद उचट जानेपर अगर वे फिर जानना चाहें, तो मुझे ही तो उसका जवाब देना होगा ! यह कहकर कमला बिन्दुका हाथ अपने हाथमें लेकर विनीत कंठसे बोली—जीवन-भर मैं सिर सीधा रखकर नहीं चल सकूँगी ननदजी, मुझे दया करके एक बार उनके पास पहुँचा दो।

इसके बाद मन ही मन कहने लगी—भगवान्, हाथकी चूड़ियोंको यदि तुमने अबतक बचाये रखा है तो अब झूठ-सचका निर्णय करके फिरसे उन्हें छीन मत लेना देव ! दण्ड अभी खतम कहाँ हुआ है,—वह तो ज्योंका त्यों रखा हुआ है। सिर्फ इतना करो प्रभु, जिसमें मैं तुम्हारा साराका सारा कठोर दण्ड हँसती हुई सिर-माथे ले सकूँ, सिर्फ मेरा वह थोड़ा-सा रास्ता मत बन्द कर देना।

पतिके कमरेमें घुसते ही कमलासे स्थिर नहीं रहा गया। उसका दो दिनका उपवास-क्षीण शरीर और उससे भी ज्यादा कमजोर मस्तिष्क चक्कर खाकर पतिके पैरोंपर गिर पड़ा।

काशीनाथ जाग रहा था। उसे मालूम हुआ कि कोई उसके पैरोंके पास बिस्तरपर आ पड़ा है; मगर गरदन उठाकर देखनेकी उसमें शक्ति नहीं थी; इससे उसने पड़े ही पड़े पूछा—कौन बिन्दु ?

बिन्दुने कहा—नहीं भइया, भाभी हैं।

"कमला, तुम यहाँ क्यों आई ?"

बिन्दुने सिरहाने बैठकर मृदु स्वरसे कहा—यह अपनेको सम्हाल न सकी, चक्कर खाकर गिर पड़ी है भइया।

काशीनाथ चुप रहा, बिन्दुने फिर कहा—मैंने आज रात आनेको मना किया था। मैं निश्चय जानती थी कि दो दिनके बाद तुरन्त ही जिसको होश आया है वह किसी तरह इस कमरेमें आकर अपनेको सँभाल न सकेगी।

पतिके दोनों पैरोंके बीच अपना मुँह छिपाये कमला उसी तरह पड़ी थी। उसकी लगातार बहती हुई गरम आँसुओंकी धारा काशीनाथ स्वयं अपने ठंडे पैरोंपर अनुभव कर रहा था; इसीसे उसने धीरे-धीरे कहा—हाँ बहन, यहाँ नहीं आना ही इसके लिए अच्छा था।

कमलाकी तरफ देखते-देखते बिन्दुकी आँखें भर आई थीं, आँसू पोंछते-पोंछते उसने कहा—अच्छा तो था, पर ऐसा अच्छा क्या कोई कर सकता है भइया ? तुम अच्छे हो जाओ—पर बहूके ये दो दिन किस तरह बीते हैं सो मैं जानती हूँ या भगवान् जानते हैं। शायद वह खुद भी नहीं जानती।

भगवान्के नामसे काशीनाथने आँखें मीचकर अपनी बाहरी दृष्टिको मानो क्षण-भरमें भीतरकी ओर फेर लिया जहाँ विश्वके समस्त नर-नारियोंके अन्तर्यामी चिर कालसे अधिष्ठित हैं, और मानो उनके श्रीचरणोंमें इस प्रश्नको रखकर क्षण-भरतक उत्तरकी प्रतीक्षा की। उसके बाद आँखें खोलकर कहा—मेरे प्राणोंकी अब कोई आशंका नहीं है कमला, उठ बैठो—

बिन्दुने कहा—भइया, तुम जो बात मुझसे पूछ रहे थे, भौजी उसीका उत्तर देने तुम्हारे पास आई हैं।

काशीनाथके सफेद ओठोंपर मुस्कराहट आ गई; उसने कहा—अब किसीको कोई जवाब न देना होगा बिन्दु, इन दो दिनोंतक जो यह बेहोश पड़ी रही है, उसीमें मुझे पूरा जवाब मिल गया है। यह कहकर और बाँयें हाथपर भार रखकर वह उठ बैठा। फिर दाहिने हाथसे कमलाका मुँह जोरसे ऊपरको उठानेकी कोशिश करता हुआ बोला—कमला !

कमलाने कुछ जवाब नहीं दिया, वह उसी तरह जोरके साथ पैरोंमें मुँह

छिपाये पड़ी रही और उसी तरह उसकी दोनों आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहती रही।

बिन्दुने व्यस्त होकर कहा—तुम मत उठो भइया, डाक्टर कह गये हैं, फिर अगर—

काशीनाथने मुस्कराते हुए कहा—डाक्टर कुछ भी कहे बहन, मैं तुम लोगोंसे कहता हूँ कि अब डरनेकी कोई बात नहीं है, इस संकटसे तुम लोगोंने मुझे बचा लिया है।

इसके बाद काशीनाथ कमलाके बिखरे हुए रूखे बालोंको अपने हाथमें लेकर और कुछ समयतक चुपचाप इधर-उधर करते रहकर लेट गया।

अनुपमाका प्रेम

१—विरह

ग्यारह वर्षकी उम्रसे ही अनुपमाने उपन्यास पढ़-पढ़कर अपना दिमाग खराब कर लिया है। वह समझती है कि मनुष्यके हृदयमें जितना प्रेम, जितनी माधुरी, जितनी शोभा, जितना सौन्दर्य, जितनी तृषा है, सबको बीन-बीनकर इकट्ठा करके मैंने अपने मस्तिष्कके भीतर सहेजकर रख लिया है; मनुष्य-चरित्र और मनुष्य-स्वभाव मेरे लिए नख-दर्पण हो गया है। दुनियामें और कुछ सीखना बाकी नहीं; सब जान लिया है, सब सीख लिया है। अनुपमा इस बातपर विश्वास ही नहीं कर सकती कि सतीत्वकी ज्योतिको वह जैसा देखती है और प्रणयकी महिमाको वह जैसा समझती है, दुनियामें और भी कोई समझ सकता है। अनुपमाने सोचा कि मैं एक माधवी लता हूँ; फिलहाल मंजरियाँ आ रही हैं;—ऐसी दशामें शीघ्र ही सहकार-शाखा-वेष्टिता हुए बिना खिलनेके सम्मुख हुई कलियाँ किसी भी तरह पूर्ण विकसित नहीं हो सकेंगी। इसलिए उसने ढूँढ़-खोजकर एक नवीन-कान्त सहकार मनोनीत कर लिया और दो ही चार दिनमें उसे हृदय, मन, जीवन, यौवन सब-कुछ दे डाला। मन ही मन देने और लेनेका सभीको समान अधिकार है, मगर लिपट जानेके पहले सहकारके मतामतकी भी कुछ आवश्यकता होती है। वहींपर माधवी-लता जरा कुछ खतरेमें पड़ गई। नवीन नीरद कान्तको वह कैसे जतलावे कि वह उसकी माधवी-लता है,—स्फुटनोन्मुख हुई खड़ी है, उसे आश्रय न दोगे तो अभी वह अपनी कलियों समेत जमीनपर लोटती हुई अपने प्राण दे देगी।

परन्तु सहकार इतना नहीं जान सका। न जाने, न सही,—अनुपमाका प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ने ही लगा। अमृतमें गरल, सुखमें दुःख, प्रणयमें विच्छेद चिर-प्रसिद्ध हैं। दो-चार दिन बाद अनुपमाने विरह-व्यथासे जर्जरित होकर मन

ही मन कहा—स्वामिन्, तुम मुझे स्वीकार करो, चाहे न करो, मेरी तरफ मुँड़कर देखो चाहे न देखो, मैं तुम्हारी सदाकी दासी हूँ। प्राण चले जायँ यह भी मंजूर है; पर तुम्हें किसी तरह नहीं छोडूँगी। इस जन्ममें न मिलो तो दूसरे जन्ममें निश्चय ही मिलोगे;—तब देखना कि सती-साध्वीकी इन छोटी-छोटी बाँहोंमें कितना बल है।

अनुपमा बड़े आदमीकी लड़की है। उसके मकानसे लगा हुआ उद्यान भी है और मनोरम सरोवर भी। वहाँ चन्द्रमा भी उदित होता है, कमल भी खिलते हैं, कोयल भी कूकती है और मधुप भी गुंजारते हैं। वहींपर घूम-फिरकर वह विरह-व्यथा अनुभव करने लगी। बाल बखेरकर, अलंकार खोलकर, देहमें धूल लपेटकर, प्रेमकी जोगिन बनकर, कभी सरसीके जलमें मुँह देखने लगी, कभी नयन-जलसे वक्षःस्थलको प्लावित करती हुई गुलाब-पुष्पका चुम्बन करने लगी; कभी अंचल बिछाकर वृक्षके नीचे पड़कर दीर्घ-निःश्वासें लेने लगी;—भोजनमें रुचि नहीं, सोनेकी इच्छा नहीं, साज-शृंगारसे अत्यन्त विरक्ति, गप-शप या बातचीतमें बिलकुल मन नहीं। इस तरह अनुपमा दिनपर दिन सूख-सूखकर काँटा होने लगी; यह देखकर उसकी माँको बड़ी चिन्ता हो गई,—एकके सिवाय दूसरी लड़की नहीं, उसको भी यह क्या हो गया? पूछनेपर वह न जाने क्या जवाब दिया करती है, किसीकी समझमें नहीं आता; ओठोंकी बात ओठोंमें ही बिला जाती है। अनुपमाकी माँने एक दिन जगद्बन्धु बाबूसे कहा—सुनते हो, इसकी तरफ क्या बिलकुल देखोगे ही नहीं? तुम्हारे इस एकके सिवा दूसरी लड़की नहीं, वह भी बिना इलाजके मरी जा रही है।

जगद्बन्धु बाबूने विस्मित होकर कहा—क्या हुआ उसे?

"सो तो मालूम नहीं। डाक्टर साहब तो देख-भालकर कह गये कि उसको कोई बीमारी नहीं है!—तो फिर ऐसी क्यों होती जाती है?

जगद्बन्धु बाबूने चिढ़कर कहा—सो मैं कैसे जानूँगा?

"तो फिर हमारी लड़की मर जाय?"

"यह तो बड़ी मुश्किलकी बात है! बुखार नहीं, कोई बला नहीं,—यों ही अगर मर जाय तो मैं क्या उसे पकड़कर रख सकता हूँ?"

तब अनुपमाकी माँ सूखा मुँह लिये बड़ी बहूके पास जाकर बोली—बहू, मेरी

अनू इस तरह क्यों घूमा करती है ?

"मैं कैसे जान सकती हूँ, अम्मा ?"

"तुम लोगोंसे क्या कुछ बातचीत नहीं होती ?"

"नहीं।"

इसपर गृहिणी रो-सी उठीं—तब क्या होगा ? बिना खाये-पीये-सोये इसी तरह दिन-दिनभर बगीचेमें घूमती फिरेगी, तो कै दिन जीयेगी ? तुम लोग उसे समझा-बुझाकर किसी तरह रास्तेपर ले आओ,—नहीं तो मैं किसी दिन तालाबमें डूब मरूँगी। बड़ी बहूने कुछ देरतक सोच-विचारकर कहा—देखभालकर उनका ब्याह कर दो, गिरस्तीका बोझ सिरपर आयगा तो अपने आप ठीक हो जायँगीं।

"अच्छी बात है, तो फिर आज ही मैं यह बात उनसे कहूँगी।"

अनुपमाके बापने यह बात सुनकर हँसते हुए कहा—कलिकाल ठहरा ! कर दो, ब्याह करके ही देखो शायद अच्छी हो जाय।

दूसरे ही दिन घटक आया। अनुपमा बड़े आदमीकी लड़की ठहरी, और रूपवती, फिर भला पात्रोंकी क्या कमी ? एक ही सप्ताहमें घटक महाराजने लड़का ठीक करके जगद्बन्धु बाबूको खबर दी। उन्होंने यह बात गृहिणीसे कही; गृहिणीने बड़ी बहूसे कही; क्रमशः अनुपमाको मालूम हो गया।

दो-एक दिन बाद एक दिन दोपहरके वक्त सब मिलकर अनुपमाके ब्याहके बारेमें बातचीत कर रही थीं, इतनेमें बाल बखेरे, एक गुलाब हाथमें लिये शिथिल-वसना अनुपमा भी तसवीरकी तरह वहाँ आ खड़ी हुई। अनुपमाकी माँने लड़की-को देखकर जरा हँसते हुए कहा—बिटिया तो मेरी जैसे जोगिन बन गई है !

बड़ी बहूने जरा मुस्कराते हुए कहा—ब्याह होते ही यह सब हवा हो जायगा। और दो-एक लड़के हुए नहीं कि फिर तो कुछ बात ही नहीं।

अनुपमा तसवीरकी तरह खड़ी-खड़ी सब सुनती रही। बहूने फिर कहा—अम्मा, ननदजीके व्याहका दिन कब ठहरा ?

"दिन अभी निश्चित नहीं हुआ है।"

"नन्दोईजी पढ़ क्या रहे हैं ?"

"अबकी बार बी० ए० का इम्तहान देंगे।"

"तब तो अच्छा दूल्हा मिला।"

इसके बाद बड़ी बहू मुस्कराती हुई मजाकमें बोली—पर देखनेमें खूबसूरत नहीं हुआ तो हमारी ननदजीको पसन्द नहीं आयेगा।

"क्यों, पसन्द क्यों नहीं आवेगा? जमाई हमारा देखनेमें तो बहुत ही अच्छा है।"

अब तो अनुपमाने अपनी गरदन कुछ टेढ़ी की और जरा झुककर पैरके नाखूनोंसे मिट्टी खोदनेकी-सी चेष्टा करते हुए कहा—ब्याह मैं नहीं करूँगी।

माँको ठीकसे सुनाई नहीं दिया, इससे उन्होंने पूछा—क्या कहा बिटिया?

बड़ी बहूने अनुपमाकी बात सुन ली थी। वह खूब जोरसे हँस पड़ी और बोली—ननदजी कह रही हैं, ब्याह मैं कभी नहीं करूँगी।

"ब्याह नहीं करेगी?"

"नहीं।"

'न करे' कहकर अनुपमाकी माँ मुँह बिचकाती और भीतर ही भीतर मुस्कराती हुई चली गईं। उनके चले जानेपर बड़ी बहूने अनुपमासे कहा—ब्याह नहीं करोगी?

अनुपमाने पहलेकी ही तरह गम्भीर मुँह बनाकर कहा—हरगिज नहीं।

"क्यों?"

"जिस तिसके गले मढ़ देनेका नाम ही विवाह नहीं है। बिना मन मिले ब्याह करना ही गलत है।"

बड़ी बहू आश्चर्यमें आकर अनुपमाके चेहरेकी ओर देखती हुई बोली—गले मढ़ देना किसे कहते हैं जी? यदि माँ-बाप किसीको न सौंपेंगे तो क्या लड़कियाँ खुद देख-भालकर पसन्द करके ब्याह करेंगी?

"जरूर।"

"तो तुम्हारी रायमें मेरा ब्याह भी गलत हो गया है? ब्याहके पहले तो मैं तुम्हारे भइयाका नामतक नहीं जानती थी?"

"सभी क्या तुम्हारी तरह हैं?"

बड़ी बहूको फिर हँसी आ गई, बोली—तुम्हें क्या कोई मनका आदमी मिल गया है?

अनुपमाने अपनी भाभीकी इस सहास्य व्यंग्योक्तिपर अपना मुँह पहलेसे

चौगुना गम्भीर बनाकर कहा—भाभी, मजाक उड़ा रही हो, क्यों ? यह क्या मजाक करनेका वक्त है ?

"क्यों, हो क्या गया ?"

"हो क्या गया ?" तो सुनो। अनुपमाको मालूम हुआ मानो उसके पतिका उसके सामने ही वध किया जा रहा है,—सहसा कतलू खाँके किलेमें वध-मंचके सामनेका विमला और वीरेन्द्रसिंहका हृदय उसके सामने खड़ा हो गया। अनुपमाने सोचा—वे जैसा कर सके, क्या मैं वैसा नहीं कर सकती ? सती स्त्री संसारमें किससे डरती है ? देखते-देखते उसकी आँखें एक अनैसर्गिक तेजसे चमकने लगीं—देखते-देखते उसने अपना अंचल कमरसे लपेट लिया। यह हालत देखकर बहू तीन हाथ पीछे हट गई। पल-भरमें अनुपमा पासके पलंगके पायेसे जोरसे लिपटकर ऊपरकी ओर देखती हुई जोर-जोरसे चिल्लाकर कहने लगी—प्रभो, स्वामी, प्राणनाथ, संसारके सामने आज मैं मुक्त कंठसे स्वीकार करती हूँ, तुम्हीं मेरे प्राणनाथ हो। प्रभो, तुम मेरे हो,—मैं तुम्हारी हूँ। यह पलंगका पाया नहीं है प्रभो, यह तुम्हारे चरण-युगल हैं;—मैं धर्मको साक्षी मानकर तुम्हें पतित्वमें वरण कर रही हूँ। तुम्हारे चरण छूकर कहती हूँ,—इस संसारमें तुम्हारे सिवा और कोई मेरा स्पर्शतक नहीं कर सकता; किसीकी मजाल है जो प्राण रहते हम दोनोंको अलग कर सके ? माँ, माँ, जगजननी !—

बड़ी बहू चिल्लाती हुई बाहर दौड़ी गई—अजी देखो, लल्लीको क्या हो गया ! देखते-देखते गृहिणी दौड़ी आई। बहूजीका चीत्कार बाहरतक पहुँच गया था। 'क्या हुआ, हुआ क्या,' कहते हुए जगद्बन्धु बाबू और उनके पुत्र चन्द्र बाबू भी दौड़ आये। मालिक-मालिकिन, पुत्र-पुत्रवधू और दास-दासियोंसे कमरा भर गया। अनुपमा मूर्च्छित होकर खाटके पास पड़ी है। गृहिणी रोने लगी—मेरी अनुको यह क्या हो गया ! डाक्टर बुलाओ ! पानी लाओ ! पंखा करो !—इत्यादि शोर-गुल सुनकर मुहल्लेके आधे पड़ोसी भी वहाँ आ पहुँचे।

बहुत देर बाद आँखें खोलकर अनुपमाने धीरे-धीरे कहा—मैं कहाँ हूँ ? उसकी माँने मुँहके पास मुँह ले जाकर स्नेहके साथ कहा—क्यों बिटिया, तुम तो मेरी गोदमें पड़ी हो। अनुपमाने एक गहरी साँस ली और धीरे-धीरे कहा—ओह, तुम्हारी गोदमें ! मैं तो सोच रही थी कि और कहीं किसी स्वप्नराज्यमें उनके

साथ बहती हुई चली जा रही हूँ। उसके कपोलोंमें बह-बहकर आँसू टपकने लगे। माँने उन्हें पोंछते हुए कातर होकर कहा—क्यों रो रही हो बिटिया ? किसकी बात कह रही हो ?

अनुपमा गहरी उसास भरकर मौन हो गई। बड़ी बहूने चन्द्र बाबूको एक तरफ बुलाकर कहा—सबको चले जानेके लिए कह दो; अब कोई डर नहीं है; लल्ली अच्छी हो गई। धीरे-धीरे सब चले गये। रातको बड़ी बहू अनुपमाके पास आकर बैठ गई और बोली—किसके साथ ब्याह होनेसे तुम सुखी होगी ?

अनुपमाने आँखें मींचकर कहा—सुख-दुःख मेरे लिए कुछ भी नहीं है; वही मेरे स्वामी हैं—

"सो तो समझ गई—पर वे हैं कौन ?"

"सुरेश ! सुरेश—"

"सुरेश ? राखाल मजूमदारका लड़का ?"

"हाँ, वही।"

रातको ही अनुपमाकी माँको यह बात मालूम हो गई। दूसरे ही दिन वे मजूमदारके घर पहुँची। बातों-बातोंमें सुरेशकी माँसे उन्होंने कहा—अपने लड़के-के साथ मेरी लड़कीको ब्याह दो। सुरेशकी माँने हँसते हुए कहा—ठीक तो है !

"ठीक नहीं, तुम्हें यह सम्बन्ध करना ही पड़ेगा।"

"लेकिन सुरेशसे तो एक बार पूछ आऊँ। वह घरहीमें है; अगर वह राजी हो गया तो उसके बाप भी इनकार नहीं करेंगे।"

सुरेश इन दिनों घरपर ही बी० ए० परीक्षाके लिए तैयारी कर रहा है,—एक-एक मिनट उसके लिए एक-एक वर्ष हो रहा है। उसकी माँने ब्याहकी बात कही तो उसने सुनी ही नहीं। फिर कहा—सुरेश, तुझे ब्याह करना होगा।

सुरेशने मुँह उठाकर कहा—हाँ, सो तो ठीक है, पर अभी क्यों ? पढ़ते समय ये सब बातें अच्छी नहीं लगतीं।

माँने कुछ अप्रतिभ होकर कहा—नहीं नहीं, अभी नहीं—परीक्षा हो जाय उसके बाद ब्याह होगा।

"कहाँ ?"

"इसी गाँवमें; जगद्बन्धु बाबूकी लड़कीसे।"

"क्या ? चन्दूकी बहनसे जिसे वह लल्ली कहा करता है ?"

"लल्ली क्यों, उसका नाम अनुपमा है।"

सुरेश मुस्कराता हुआ बोला—हाँ, अनुपमा !—अरे मारो गोली—देखनेमें बड़ी भद्दी है।

"भद्दी क्यों है ? वह तो ऐसी अच्छी है देखनेमें !"

"होने दो अच्छी देखनेमें, एक ही जगह ससुराल और घर, मुझे बिलकुल पसन्द नहीं।"

"क्यों, इसमें बुराई क्या है ?"

"बुराईकी बात रहने दो; तुम जाओ माँ, मुझे अभी पढ़ना है—बहुत बाकी पड़ा है।"

सुरेशकी माँने लौटकर कहा—सुरेश तो एक ही गाँवमें ब्याह करनेको किसी तरह राजी नहीं होता।

"क्यों ?"

"सो नहीं जानती।"

अनुपमाकी माँने मजूमदार-गृहिणीका हाथ पकड़कर बड़े करुण भावसे कहा—सो नहीं होनेका बहन। यह ब्याह तो तुम्हें करना ही पड़ेगा।

"लड़का राजी न हो, तो मैं क्या कर सकती हूँ बताओ ?"

"बिना कराये मैं छोड़ूँगी नहीं।"

"तो आज रहने दो; कल फिर एक बार समझाऊँगी, देखूँ अगर राजी कर सकूँ।"

अनुकी माँने घर आकर जगद्बन्धु बाबूसे कहा—उनके सुरेशके साथ मेरी अनूका ब्याह होना ही चाहिए; जैसे बने तुम इसे पक्का कराओ।

"क्यों भला ? रायग्राममें तो करीब-करीब पक्का ही हो चुका है; उस सम्बन्धको क्या छोड़ दोगी ?

"कारण है।"

"क्या ?"

"और कुछ भी नहीं; सुरेश सरीखा रूपवान्, गुणवान् लड़का सहजमें नहीं मिल सकता और फिर मेरे एक ही तो लड़की है, उसे मैं दूर हरगिज नहीं ब्याह

सकती। सुरेशके साथ होगा, तो गाँवकी गाँवमें जब जीमें आया, देख सकूँगी।"

"अच्छा, कोशिश करूँगा।"

"कोशिश नहीं जी,—जरूर, करना ही पड़ेगा।"

स्त्रीके नथ हिलानेका ढंग देखकर जगद्वन्धु बाबूको हँसी आ गई, बोले—जरूर करूँगा।

शामके बाद जगद्वन्धु बाबूने मजूमदारके यहाँ से लौटकर स्त्रीसे कहा—ब्याह नहीं हो सकता।

"क्यों, क्या बात हुई?"

"क्या करूँ, बतलाओ? वे अगर राजी न हों, तो मैं जबरदस्ती उनके घर जाकर लड़कीको फेंक तो आ नहीं सकता!"

"क्यों, राजी क्यों नहीं होते?"

"एक ही गाँवमें ब्याह करनेकी उनकी मंशा नहीं है।"

अनुकी माँने माथेपर हाथ दे मारे, बोली—मेरी तकदीरका ही दोष है!

दूसरे दिन वे फिर सुरेश की माँके घर पहुँचीं और बोलीं—जीजी, ब्याह तो करना ही पड़ेगा।

"मेरी तो इच्छा है, पर लड़का जो राजी नहीं होता!"

"मैं छिपाकर सुरेशको और भी पाँच हजार रुपये दूँगी।"

रुपयेका लोभ सबसे बड़ा लोभ है। सुरेशकी माँने यह बात सुरेशके बापसे कही। उन्होंने सुरेशको बुलाकर कहा—सुरेश, तुम्हें यह ब्याह करना ही होगा।

"क्यों?"

"क्यों क्या होता है? इस ब्याहमें तुम्हारी गर्भधारिणीका मत है, मेरी भी राय है; साथ ही एक और भी कारण आ पड़ा है।"

सुरेशने नीची निगाह किये हुए कहा—अभी पढ़ने-लिखनेका समय है—परीक्षामें हानि होगी।

"सो तो मुझे मालूम है बेटा! मैं तुम्हें परीक्षाकी हानि करनेको नहीं कहता। परीक्षा खतम हो जानेपर ब्याह होगा।"

"जैसी आज्ञा।"

अनुकी माँके आनन्दकी सीमा न रही। उन्होंने यह बात पतिसे कही और नौकर-चाकर सबको ही बड़ी खुशीसे यह समाचार सुना दिया। बड़ी बहूने अनुपमाको बुलाकर कहा—सुना ननदजी, तुम्हारा दूल्हा तो पकड़ाई दे गया।

अनुपमाने लज्जाके साथ जरा-सा मुस्कराते हुए कहा—मैं तो पहलेहीसे जानती थी।

"कैसे मालूम हुआ? चिट्ठी-पत्री चलती थी क्या?"

"प्रेम अन्तर्यामी होता है। हमारी चिट्ठी-पत्री मन ही मन चला करती थी।"

"ननदजी, तुम धन्य हो!"

अनुपमाके चले जानेपर बड़ी बहूने धीरेसे कहा—इस उम्रमें ये छोटे मुँह बड़ी-बड़ी बातें सुनकर देह जलने लगती है। मैं तीन-तीन लड़कोंकी माँ हो गई—ये मुझे आज प्रेम सिखाने चली हैं!

* * * *

२—प्रेमका परिणाम

दुर्लभ वसु काफी धन-दौलत छोड़कर जब परलोक सिधार गये, तब उनके बीस वर्षके इकलौते पुत्र ललितमोहनने उनकी श्राद्ध-शान्ति की और फिर एक दिन स्कूल जाकर मास्टरसे कहा—मास्टर साहब, मेरा नाम काट दीजिए।

"क्यों क्या बात है?"

"फिजूल पढ़ने-लिखनेसे क्या होगा? जिसके लिए पढ़ा-लिखा जाता है, वह मेरे पास बहुत है, पिताजी मेरे लिए पढ़-लिखकर काफी धर गये हैं!"

मास्टर साहबने आँख मिचकाकर मुस्कराते हुए कहा—तो फिर तुम्हें फिक्र ही किस बातकी है? अब मजेसे चरो और खाओ!

यहींपर ललितमोहनके विद्याभ्यासकी इति हो गई।

ललितमोहनकी एक तो कच्ची उम्र और फिर हाथमें काफी रुपया, लिहाजा स्कूल छोड़ते ही काफी यार-दोस्त जुट गये और उसके बाद क्रमशः तमाखू, भाँग, गाँजा, शराब, गायक-गायिका इत्यादि एकके बाद एक उसकी बैठककी शोभा बढ़ाने लगे। इधर पिताका संचित किया हुआ धन भी पानीकी तरह

तरंगें लेता हुआ तेजीके साथ सागरकी तरफ दौड़ने लगा। माँने रो-धोकर बहुत समझाया, बहुत-कुछ कहा-सुना, पर उसने सुना ही नहीं।

एक दिन वह घूमता हुआ सूर्ख आँखें लिये हुए माँके पास जाकर बोला—माँ, मुझे इसी समय पचास रुपया दो। माँने कहा—मेरे पास एक पैसा भी नहीं है। ललितमोहन और कुछ न कहकर एक कुल्हाड़ी उठा लाया, और उससे माँका बॉक्स तोड़कर उसमेंसे पचास रुपया लेकर चलता बना। माँ खड़ी-खड़ी सब देखती रही, कुछ बोली नहीं।

दूसरे दिन उसने पुत्रके हाथमें लोहेके सन्दूककी चाबी देकर कहा—बेटा, यह लो लोहेके सन्दूककी चाबी। तुम्हारे बापका रुपया है, जैसे चाहो खर्च कर सकते हो; अब मैं कुछ नहीं कहूँगी। पर भगवान्से प्रार्थना करती हूँ कि मेरे चले जानेपर तुम्हारी आँखें खुल जायँ।

ललितने विस्मित होकर कहा—कहाँ जाओगी?

"मालूम नहीं। आत्म-घात करनेसे कहाँ जाना पड़ता है, सो तो मैं नहीं जानती; पर इतना मालूम है कि सद्गति नहीं होती। पर क्या करूँ बताओ,—मेरी तकदीर ही ऐसी है!"

"आत्म-घातिनी होगी?"

"और चारा ही क्या है? तुम्हें पेटमें धरकर मुझे सभी सुख जो मिल चुके। अब रोज-रोज तुम्हारी झाड़ू-लात खानेकी अपेक्षा जमदूतका अग्निकुण्ड क्या बुरा है?"

ललितमोहन माँको पहचानता था—वह अच्छी तरह जानता था कि उसकी माँ झूठ-मूठ डरानेवाली नहीं है। तब वह रोने लगा और पैरों पड़कर कहने लगा—माँ, अबकी बार तुम माफ कर दो, अब ऐसा काम कभी न करूँगा। तुम रहो, जाओ मत।

माँने रूखे स्वरमें कहा—ऐसा भी कहीं हो सकता है? तुम्हारे यार-दोस्त, आखिर वे सब जायँगे कहाँ?

"मैं किसीको नहीं चाहता। रुपया-पैसा, यार-दोस्त, कुछ भी नहीं चाहता, सिर्फ तुम रहो।"

"तुम्हारी बातका विश्वास क्या है?"

"क्यों माँ, मैं तुम्हारी बुरी औलाद हूँ, फिर भी क्या कभी मैंने कोई अविश्वासका काम किया है ? तुम यहाँ रहकर खुशी-खुशी जो दोगी, उससे ज्यादा मैं एक पैसा भी नहीं माँगूँगा।"

"खुशी-खुशी तो तुम्हें एक पैसा भी देनेको जी नहीं चाहता—क्योंकि एक-डेढ़ सालके अंदर ही तुमने जितना रुपया उड़ाया है, उससे आधा भी तुम कभी अपनी जिन्दगीमें पैदा नहीं कर सकोगे।"

"तो तुम मुझे कुछ भी मत देना।"

जननीका हृदय कोमल हो उठा; उसने कहा—नहीं, तुम इतना नहीं सह सकते; और मैं भी ऐसा नहीं चाहती। महीनेमें एक सौ रुपयेसे तुम्हारा काम चल जायगा ?

"मजेसे।"

"तो यही ठीक रहा।"

दो ही एक दिनमें उसके यार-दोस्त सब धीरे-धीरे खिसकने लगे। ललितमोहन दो-एकके घर बुलाने भी गया; किसीने कहा—'कल आऊँगा' और कोई बोला—'आज काम है।' परिणामस्वरूप आया कोई भी नहीं। अब वह बिलकुल अकेला पड़ गया। अकेला शराब पीता है, अकेला ही घूमता-फिरता है। उसने एक बार सोचा—अब शराब नहीं पीऊँगा; पर वक्त कैसे कटे ? लिहाजा वह न छूट सकी। एक रास्तेपर वह अकसर घूमा करता; वह रास्ता जगद्बन्धु बाबूके बगीचेके बगलसे होकर गया है, और अपेक्षाकृत निर्जन होनेसे वहाँ शराब पीकर घूमने-फिरनेका मौका भी सबसे अच्छा है। शराबी होनेसे गाँव-भरमें उसकी काफी बदनामी थी; इसलिए किसीके घर जाना अच्छा नहीं मालूम होता था—लिहाजा वह शराब पीकर अपने ही साथ आप घूमा-फिरा करता था।

आजकल उसे एक और साथी मिल गया है,—वह है अनुपमा। आते-जाते वह अकसर देखा करता है—उसीकी तरह अनुपमा भी बगीचेके भीतर घूमा-फिरा करती है। अनुपमाको वह बचपनसे देखता आया है—परन्तु आजकल उसमें उसे कुछ नवीनता-सी दीख पड़ती है। जगद्बन्धु बाबूके बगीचेकी दीवारका एक हिस्सा टूटा था, वहाँसे एक पेड़के पास खड़ा होकर वह

देखता—अनुपमा बगीचे-भरमें घूमती-फिरती है, कभी पेड़के नीचे बैठी हुई फूलों-की माला गूँथती है, कभी फूल चुनती है, और कभी-कभी सरोवरके शीतल जलमें दोनों पैर डुबोकर बालिका-सुलभ क्रीड़ा करती है। यह देखना उसे बहुत अच्छा लगता; इधर-उधर बिखरे हुए बाल, अयत्न-रक्षित देहलता, गैर-सिलसिलेके कपड़े और गहने और सबसे बढ़कर उसका चेहरा, शराबकी मदभरी आँखोंसे उसे कमल-पुष्प-सा दिखाई देता। कभी-कभी उसे ऐसा मालूम होता कि संसारमें अनुपमाको देखते रहना ही उसे सबसे ज्यादा प्रिय है। रात होते ही वह घर जाकर सो रहता, और जबतक नींद नहीं आती, तबतक अनुपमाका मुखड़ा उसे याद आता रहता। स्वप्नमें भी कभी-कभी अनुपमाका अनिन्द्य-सुन्दर मुख-मंडल उसके हृदयमें जाग उठता। इसी तरह कितने ही दिन बीत गये; जगद्बन्धु बाबूके बगीचेकी उस टूटी दीवारके पास रोज शामको बैठे रहना आजकल उसका नित्यकर्म हो गया है। बच्चा नहीं है। इसलिए थोड़े ही दिनमें समझ गया कि अनुपमाको वास्तवमें मैं बहुत ज्यादा प्रेम करने लगा हूँ। परन्तु ऐसे प्रेमसे लाभ कुछ नहीं। वह जानता था कि मैं शराबी हूँ, अयोग्य और मूर्ख हूँ, सबसे घृणित हूँ,—अनुपमाके योग्य किसी भी हालतमें नहीं हो सकता—सैकड़ों कोशिशें करने-पर भी उसे पाना मेरे लिए सम्भव नहीं, तो फिर इस तरह व्यर्थ मन खराब करने-से लाभ क्या? कलसे अब नहीं आऊँगा। पर रहा नहीं जाता,—सूर्यास्त होते ही वह शराब पीकर उस टूटी दीवारके ऊपर आकर बैठ जाता। मगर इसके भीतर एक बात और है—किसीको प्रेम करनेसे मालूम होता है कि शायद वह भी इसी तरह प्रेम करती हो; और क्यों नहीं वह प्रेम करेगी? हाँ, इतना जरूर है कि यह बात साबित नहीं की जा सकती!

× × × ×

एक दिन ललितमोहन दीवारपर चढ़ा ही था कि चन्द्र बाबूकी उसपर निगाह पड़ गई।

चन्द्र बाबूने दरबानको पुकार कर कहा—···को पकड़ो। दरबान पहले तो समझ ही न सका कि किसे पकड़ना है; और बादमें जब समझा कि ललित बाबूको पकड़ना है, तब सलाम करके तीन हाथ पीछे हटकर खड़ा हो गया। चन्द्र बाबूने फिर जोरसे चिल्लाकर कहा—···को पकड़के थानेमें ले जाओ।

दरबान बंगला-हिन्दीकी खिचड़ी पकाता हुआ बोला—हामि नहीं पारबे बाबू। (मुझसे न हो सकेगा, बाबू।) ललितमोहन तबतक दीवारसे उतरकर धीरेसे चलता बना। उसके चले जानेपर चन्द्र बाबूने कहा—क्यों नहीं पकड़ा? दरबान चुप हो रहा। एक माली ललितको अच्छी तरह जानता था, उसने कहा—भला इस भोजपुरियाकी क्या मजाल है जो ललित बाबूको पकड़े! इस जैसे चार दरबानोंके सिर तो वे एक घूँसेसे ही तोड़ देंगे। दरबानने भी इस बातसे इनकार नहीं किया; बोला—बाबू नौकरी करने आया हूँ, जान देने नहीं।

पर चन्द्र बाबू ऐसे ही छोड़ देनेवाले नहीं थे। ललितपर वे पहलेहीसे बहुत खफा थे, अब मौका पाकर, गवाह जुटाकर उन्होंने अनधिकार-प्रवेश और न जाने क्या-क्या अपराध लगाकर अदालतमें दावा दायर कर दिया। जगद्बन्धु बाबू और उनकी स्त्री दोनोंहीने इस मुकदमेके लिए मना किया; लेकिन चन्द्रनाथने एक न सुनी। और मर्मपीड़िता अनुपमाने तो खास तौरसे जिद की कि पापीको सजा दिये बिना मेरा मन किसी भी तरह शान्त नहीं होगा!

इन्स्पेक्टरने घरपर आकर अनुपमाका इजहार लिया। अनुपमाने सब कुछ ठीक-ठीक कह दिया। अन्तमें मामला ऐसा हो गया कि ललितकी माँ काफी रुपया खर्च करके भी लड़केको किसी तरह न बचा सकी। ललितमोहनको तीन सालकी कड़ी सजाका हुक्म हो गया।

× × × ×

बी० ए० की परीक्षाका रिजल्ट निकल गया। सुरेशचन्द्र मजूमदार एकदम फर्स्ट आये। गाँव-भरमें तारीफका तहलाका-सा मच गया। अनुपमाकी माँके आनन्दकी सीमा न रही। वे मारे खुशीके सुरेशकी माँसे जाकर बोलीं—अपनी बात अपने आप नहीं कहना चाहिए, मगर देखो तो सही, मेरी लड़कीका भाग्य!

सुरेशकी माँने हँसते हुए कहा—सो तो देख ही रही हूँ।

"ब्याह तो हो जाने दो, फिर तुम्हारा लड़का राजा न हो जाय तो कहना। अनू जब पैदा हुई थी, तब एक जोतिसीने आकर कहा था कि यह लड़की रानी होगी। इतने सुखसे कोई कभी नहीं रही और न रहेगी जितना सुख, तुम्हारी लड़कीको होगा।

"किसने कहा था?

"एक संन्यासी जोतिसीने।"

"लेकिन, पहले तुम अपने जमाईके लिए एक मकान तो खरिदवा दो।"

"क्यों नहीं, जरूर। यों तो चन्द्रको मैं अपनी कोखका ही लड़का समझती हूँ, पर मेरी अनूको भी हिसाबसे देखा जाय तो बापकी आधी जायदाद मिलनी चाहिए और मैं जिन्दी रही तो वह पायगी ही।"

"ऐसा ही हो— दोनों राजा-रानी होकर सुखसे रहें और हम लोग यह देखके मरें।"

दो दिन बाद राखाल मजूमदारने अपने पुत्रको बुलाकर कहा—इसी बैसाख-में तुम्हारे ब्याहका दिन ठीक हुआ है।

"मेरी जरा भी इच्छा नहीं कि अभी ब्याह हो।"

"क्यों?"

"मैंने 'गिलक्रिष्ट-स्कालरशिप' पाया है, चाहूँ तो मैं उससे विलायत जाकर पढ़ सकता हूँ।"

"तुम विलायत जाओगे?"

"इच्छा तो है।"

"पढ़ते-पढ़ते तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। ऐसी बात फिर कभी जबानपर भी न लाना।"

"बिना खर्चके जब यह सुभीता मिल रहा है, तब दोष ही क्या है?"

राखाल बाबू इस बातपर आग-बबूला हो उठे; बोले—नास्तिक कहींका! कहता है, दोष क्या है? दूसरेके खर्चसे अगर जहर मिल जाय, तो क्या वह भी खाना होगा?

"उस बातमें और इस बातमें बहुत फर्क है।"

"फर्क कहाँ रहा? इस तरफ है जात खोना और म्लेच्छ होना, और दूसरी तरफ है जहर खाना। ठीक एक बात नहीं तो और क्या है? बाल-बाल नहीं मिल जाता है?"

सुरेश फिर किसी तरहका प्रतिवाद न करके चुपचाप चल दिया। उसके चले जानेपर राखाल बाबू अपने ही आप हँसकर कहने लगे—बेटा दो-चार पन्ने अंग्रेजी पढ़के हम लोगोंसे बहस करनेको तैयार हैं! कैसी बात सुना दी!—

दूसरेके खर्चसे जहर मिल जाय, तो क्या वह भी खाना होगा ? बच्चूके मुँहसे एक लब्ज भी न निकल सका। ऐसी अकाट्य युक्तिको क्या कोई काट सकता है ?

ब्याहका सब कुछ पक्का हो जानेपर बड़ी बहूने एक दिन अनुपमासे कहा— तुम्हारे दूल्हेकी नामवरी तो गाँवमें समाती ही नहीं।

अनुपमाने मन्द मुस्कराहटके साथ कहा—जिसके सती-साध्वी स्त्री है, दुनिया में उसके लिए मुखके सभी द्वार खुले रहते हैं।

"फिर भी तो अभी ब्याह नहीं हुआ लल्ली ?"

"ब्याह हम लोगोंका बहुत दिन पहले हो चुका है; अवश्य ही उसे दुनिया-नहीं जानती, पर भीतर-भीतर हम दोनोंके हृदयका पूर्ण मिलन बहुत दिन पहले हो गया है।"

बड़ी बहू जरा हँसी; ओठोंको जरा कुंचित करके और जरा ठहर कर बोली— यह बात और कहीं मत कह बैठना; मैं अध-बूढ़ी लुगाई हूँ, फिर भी मुझे कहना तो दूर रहा—ऐसी बात सुननेमें भी शरम लगती है; और तुम सभी बातें ऐसे कह जाती हो जैसे थियेटरमें ऐक्टिंग करती हो;—ऐसा करोगी तो लोग पागल कहेंगे।

"मैं प्रेममें पागल हूँ !"

३—विवाह

आज बैसाख सुदी पंचमी है। अनुपमाके विवाहोत्सवके कारण गाँव-भरमें धूम मची हुई है। जगद्बन्धु बाबूके घर आज भीड़का कोई ठिकाना नहीं है, समाती ही नहीं। एक तरफ खिलाने-पिलानेका ठाठ और दूसरी तरफ बाजोंकी धूम। ज्यों-ज्यों शाम करीब आने लगी, त्यों-त्यों धूमधाम बढ़ने लगी। गोधूलिके बाद ही ब्याह है; दूल्हा आता ही होगा, सभी लोग उत्साह और आग्रहसे उद्ग्रीव हो रहे हैं।—पर दूल्हा है कहाँ ? राखाल बाबूके घर शामके पहलेसे ही शोर मच रहा है—सुरेश गया किधर ? 'इधर ढूँढ़' और 'उधर ढूँढ़', 'इधर देख' और 'उधर देख' मचा हुआ है। फिर भी कोई सुरेशको ढूँढ़ नहीं पा रहा है। कुसंवादके पहुँचनेमें देर नहीं लगती; बिजलीकी तरह उड़ती हुई यह बात जगद्बन्धु बाबूके

घर भी पहुँच गई। घर-भरके सभी लोग करमपर हाथ रखकर बैठ गये—एँ, यह हुआ क्या!

ठीक आठ बजे लग्न है, मगर नौ बज रहे हैं; कहीं भी दूल्हेका पता नहीं चल रहा है। जगद्बन्धु बाबू सिर धुनते हुए इधरसे उधर दौड़ने लगे। अनुपमाकी माँ रोती हुई उनके पास आकर कहने लगी—अब क्या हो जी? जगद्बन्धु बाबू उस समय आधे पागल-से हो रहे थे। चिल्ला उठे, होगा मेरा सराध—और क्या होगा? इस अभागी लड़कीके लिए बुढ़ापेमें मेरी इज्जत गई, जस गया, जात गई, सब गया मेरा तो; अब जात बाहर होकर रहना होगा। क्यों मैंने अपनी मिट्टी खराब करानेके लिए बुढ़ापेमें तुमसे ब्याह किया, तुम्हारी ही वजहसे आज यह अपमान हो रहा है। शास्त्रोंमें ही लिखा है—स्त्रीबुद्धिः प्रलयंकरी। तुम्हारी बातोंमें आकर अपने ही पाँवपर आप कुल्हाड़ी मार ली मैंने! जाओ, अपनी लड़कीको लेकर चली जाओ मेरे सामनेसे, जाओ!

हाय! अनुपमाकी माँके दुःखका वर्णन नहीं किया जा सकता। इधर यह हाल है, और उधर एक और आफत। अनुपमाको बार-बार मूर्च्छा आ रही है।

इधर रात बढ़ती चली जा रही है; दस, ग्यारह, बारह बजते-बजते क्रमशः एक, दो, बज गये; परन्तु कहीं भी सुरेशका पता नहीं।

सुरेश मिले चाहे न मिले, मगर अनुपमाका ब्याह तो करना ही होगा। क्योंकि आज रातको ब्याह न हुआ, तो फिर जगद्बन्धु बाबूकी जात चली जायगी।

आखिर रातके करीब तीन बजे, मुहल्लेके पाँच पंचोंने—जगद्बन्धु बाबूके हितैषी मित्रोंने—मिलकर पचास वर्षके बूढ़े, दमाके रोगी, रामदुलाल दत्तको दूल्हेके वेशमें लाकर खड़ा कर दिया।

अनुपमाने जब सुना कि इस तरहसे उसका जीवन नष्ट करनेका उद्योग हो रहा है, तो वह मूर्च्छा छोड़कर माँके पैरोंपर लोट गई,—ओ माँ! मेरी रक्षा करो, इस तरह मेरे गलेपर छुरी मत फेरो! यह ब्याह होगा तो तुम निश्चय समझ लेना मैं आत्म-घात करके मर जाऊँगी।

माँने रोते हुए कहा—मैं क्या करूँ बिटिया?

मुँहसे वे चाहे कुछ भी कहें, पर लड़कीके दुःख और आत्म-ग्लानिसे उनका हृदय जलकर खाक हुआ जा रहा था, इसीसे रोती-झींकती हुई वे फिर पतिके

पास पहुँचीं। बोलीं—सुनते हो, जरा सोच-समझ लो—नतीजा क्या होगा—यह ब्याह हो गया तो लड़की मेरी जहर खाकर मर जायगी ! जगद्बन्धु बाबू कुछ उत्तर न देकर अनुपमाके पास पहुँचे और गम्भीरताके साथ बोले—उठो, सबेरा हुआ जा रहा है।

"कहाँ जाऊँ बाबूजी ?"

"अभी कन्या-दान करना है।"

अनुपमा रो उठी—बाबूजी, मुझे मार डालो—मैं जहर खा लूँगी।

"यदि तबीयतमें आवे, तो कल खा लेना,—आज ब्याह देकर मैं अपनी जात बचा लूँ, फिर जो जीमें आवे सो करना—जहर खाना, तालाबमें डूब मरना, मैं एक बार भी मना नहीं करूँगा।"

कैसी कठोर बात है ! अब तो सचमुच ही अनुपमाका कलेजा काँप उठा। बोली—बाबूजी, मुझे बचाओ ! बहुत रिरियायी, बहुत रोई-बिलखी, पर कोई फल न हुआ। दृढ़-प्रतिज्ञ जगद्बन्धु बाबूने उसी रातको रामदुलाल दत्तके साथ अनुपमाका ब्याह कर दिया।

बहुत दिनोंसे पत्नी-हीन वृद्ध रामदुलालके घरपर अपना कहनेको कोई नहीं था। दो पुराने ईंटोंके बने घर, जरा-सा साग-सब्जीका बगीचा—बस यही दत्त महाशयकी सांसारिक सम्पत्ति थी। बहुत तकलीफके साथ उनके दिन गुजरते थे। ब्याह करके दूसरे ही दिन वे अनुपमाको अपने घर ले आये, साथ-साथ बहुत-सी खाने-पीनेकी चीजें आईं, दास-दासियाँ आईं, कोई तकलीफ नहीं—छह-सात रोज उनके बड़े आनन्दसे बीत गये। ससुर बड़े आदमी ठहरे—अब उन्हें कोई चिंता नहीं, ब्याह करके उनकी तकदीर जग गई। परन्तु अनुपमाकी बात दूसरी थी। और दो दिन रहकर जब वह मायके लौटी, तो उसका चेहरा देखकर दास-दासियोंने भी छुपकर अपने आँसू पोंछ लिये।

घर जाकर प्राण दे दूँगी, यह बात अनुपमाने ससुरालमें ही तय कर ली थी। अब सचमुच ही वह मर जाना चाहती है। बहुत रात बीत जानेपर जब घरके सब लोग सो रहे, तो वह चुपकेसे उठकर और पीछेवाले दरवाजेसे निकलकर बगीचेके तालाबकी सीढ़ियोंपर जाकर बैठ गई। आज उसे मरना होगा—जबानी नहीं, सचमुच ही मरना होगा। अनुपमाको याद आया—और भी एक

दिन मैं यहीं मरने आई थी। वह ज्यादा दिनकी बात नहीं है, लेकिन तब मर नहीं सकी; क्योंकि तब एक आदमीने आकर मुझे पकड़ लिया था। आज वह कहाँ है ? जेलखानेमें सजा भुगत रहा है। किस कसूरपर ? वह सिर्फ इतना कहने आया था कि मैं तुमसे प्रेम करता हूँ। किसने उसे जेल भिजवाया ? चन्द्र बाबूने। क्यों ? इसलिए कि वे उसे फूटी आँख नहीं देख सकते थे, वह शराबी था, उसने अनधिकारप्रवेश किया था, मगर मैं क्या उसे बचा नहीं सकती थी ? बचा सकती थी, पर मैंने यह नहीं किया; बल्कि उसे जेल भिजवानेमें सहायता ही की। आज वह सोचने लगी—ललित क्या सचमुच ही मुझसे प्रेम करता था ? हो सकता है कि करता हो—शायद न भी करता हो; नहीं; पर उसे सजा दिलवानेसे मुझे क्या मिल गया, कौनसे इष्टकी सिद्धि हो गई ? जेलमें वह पत्थर तोड़ रहा होगा; कोल्हू चला रहा होगा और भी न जाने क्या-क्या नीच काम कर रहा होगा; इससे चन्द्र बाबूको भले ही कुछ लाभ हुआ हो; पर मुझे क्या लाभ हुआ ? उसे सजा न हुई होती तो क्या मैं उन्हें पा सकती, जो अभी आनन्दके साथ अपनी उन्नतिके लिए जहाजपर सवार होकर विलायत जा रहे हैं ?

अनुपमा बैठी-बैठी बहुत देरतक रोती रही; फिर पानीमें उतरी। घुटनेतक, छातीतक, गलेतक, फिर क्रमशः डुबान-पानीमें जा पहुँची। कोई आधे मिनटतक पानीके भींतर डूबी रहनेसे बहुत-सा पानी उसके पेटमें चला गया और तब वह फिर ऊपर उतरा आई; फिर डूबी और फिर उतरा आई। वह तैरना जानती थी, इससे सारा तालाब ढूँढ़ मारनेपर भी डूब जाने लायक पानी उसे कहीं नहीं मिला। उसने बहुत बार डुबकियाँ लगाईं, काफी पानी भी पेटमें चला गया, मगर किसी भी तरह वह एकदम न डूब सकी। उसने देखा कि मरनेका संकल्प करके भी, ज्यों ही डूबती हूँ त्यों ही, साँस रुकने लगती है और तब साँस लेनेके लिए ऊपर तैर आना पड़ता है। इस तरह सारे तालाबमें तैर-तारकर रात खतम होनेके करीब जब उसने अपनी बिलकुल थकी हुई निर्जीव देहको किसी तरह सीढ़ियोंपर लाकर पटका, तो देखा कि किसी भी हालतमें, किसी भी कारणसे क्यों न हो; इस तरह जरा-जरा करके प्राण त्यागना आसान काम नहीं है। पहले जब वह विरह-व्यथासे जर्जर होकर दिनमें सौ-सौ बार मरने जाया करती थी, तब समझती थी कि प्राणोंका रखना न रखना, नायक, नायिकाके बिलकुल हाथकी बात है;

मगर आज वह सारी रात प्राणोंके साथ खूब लड़-झगड़कर भी उन्हें निकालकर न फेंक सकी। आज वह अच्छी तरह समझ गई कि प्राणोंको हमेशाके लिए विदा कर देना—उसकी एकादशवर्षीय विरह-व्यथामें भी सम्भव नहीं।

पौ फटनेके पहले जब घर आई, तब उसका सारा शरीर मारे जाड़के काँप रहा था। माँने पूछा—अनू, इतने तड़के उठकर नहा आई बेटी? अनुपमाने सिर हिलाकर जवाब दिया—हाँ।

इधर दत्त महाशयने एक तरहसे चिरस्थायी रूपसे ही सुसरालमें डेरा जमा दिया है। शुरू-शुरूमें कुछ दिन उन्हें जमाईका-सा थोड़ा-सा आदर-सत्कार मिलता रहा, पर अब क्रमशः उसमें कमी होने लगी है। घर-भरमें किसीको भी अब वे देखे नहीं सुहाते। चन्द्रनाथ बाबू तो हर बातमें उनका मजाक उड़ाते हैं, आवाजें कसते रहते हैं, हर तरहसे उन्हें लांछित और अपमानित करते हैं। इसका एक कारण भी हो गया था। एक तो चन्द्र बाबूका हृदय वैसे ही ईर्ष्या-परायण था, उसपर जगद्बन्धु बाबूने दामाद अकर्मण्य है, इसलिए उसे कुछ धन-सम्पत्ति दे जानेको कह दिया था। अनुपमा कभी पास नहीं आती, और सास भी कुछ खबर-सुध नहीं लेती, फिर भी रामदुलालके दिन बड़े आनन्दसे कट रहे हैं। आवभगत या किसी तरहके नाते-रिश्तेदारीके कायदे-कानूनकी वे जरा भी परवाह नहीं करते हैं; जो मिल जाता है, उसीसे सन्तुष्ट हैं। दोनों वक्त सन्तोषजनक खानेको मिल जाता है, बुढ़ापेमें इतनेहीको वे काफी समझ लिया करते हैं। परन्तु उनके सुख-भोगके दिन अब ज्यादा बाकी नहीं थे। एक तो जीर्ण-शीर्ण शरीर, उसपर पुराना सखा कास-रोग उसमें बहुत दिनोंसे आश्रय लिये बैठा था और हर साल ही जाड़ोंमें वह उन्हें स्वर्ग ले जानेके लिए खींचा-तानी किया करता था। अबकी बार भी जाड़ोंमें वह खूब खींचा-तानी करने लगा। जगद्बन्धु बाबूने देखा कि यक्ष्मा रामदुलालकी नस-नस और गाँठ-गाँठमें फैल गया है! गँवई-गाँवमें उसका ठीक इलाज हो नहीं सकेगा, इसलिए उन्होंने उन्हें कलकत्ते भेज दिया। वहाँ कुछ दिनोंतक अच्छा इलाज होता रहा, उसके बाद सती-साध्वी अनुपमाके सौभाग्यसे दूसरा साल पूरा होते न होते सदानन्द रामदुलाल संसार त्यागकर चल दिये।

* * * *

४—वैधव्य

फिर भी अनुपमा थोड़ी-बहुत रोई। पतिके मरनेपर हिन्दू घरकी स्त्रीको रोना चाहिए, इसलिए रोई। इसके बाद उसने अपनी इच्छासे सफेद धोती पहनकर सारे गहने उतार डाले। माँने रोते हुए कहा—अनू, तेरी यह शकल मुझसे नहीं देखी जाती। और कुछ नहीं तो हाथोंमें कड़े तो पहने रह।

"सो नहीं हो सकता; विधवाको गहने नहीं पहनने चाहिए।"

"मगर तू तो अभी दुधमुँही लड़की है।"

"इससे क्या, हिन्दू स्त्री ज्यों ही विधवा हुई कि फिर उसमें लड़की-बूढ़ीका भेद नहीं रह जाता।"

माँ अब क्या कह सकती थी? सिर्फ रोने लगी। अनुपमाके विधवा होनेपर लोगोंको नया शोक नहीं हुआ,—सभी जानते थे कि दो-एक सालमें वह विधवा होगी ही। किसीने कहा—मुरदेके साथ व्याह करनेसे क्या सधवा रह सकती है? अनुपमाके पिता भी इस बातको जानते थे और माँ भी समझती थी; इसीसे नया शोक किसीको नहीं हुआ। जो होना था, सो विवाहकी रातको ही हो चुका था। अनुपमाने पतिको प्रेम नहीं किया, जाना नहीं, पहचाना नहीं, फिर भी वह कठोर वैधव्य-व्रत पालन करने लगी। रातको पानीतक नहीं छूती, दिनको मुट्ठी-भर चावल अपने हाथसे उबाल लेती है, और एकादशीके दिन निर्जल उपवास करती है। आज पूर्णिमा है; कल अमावास्या है; परसों शिवरात्रि है; इस तरह महीनेमें पन्द्रह रोज वह कुछ खाती ही नहीं। कोई कुछ कहता तो कहती—मेरा इह-लोक तो नष्ट हो गया, अब पर-लोकके लिए ही कुछ कर लेने दो। परन्तु इतना वह सह कैसे सकती थी? उपवास और अनियमोंके कारण सूखकर आधी रह गई। उसकी हालत देख-देखकर माँने तो समझ लिया कि अब वह मर जायगी, बचेगी नहीं। पिताने भी सोचा कि मर जाना विचित्र नहीं। इसीसे एक दिन उन्होंने स्त्रीको बुलाकर कहा—सुनो, अनूका फिरसे व्याह कर दो। गृहिणीने आश्चर्यचकित होकर पूछा—ऐसा कहीं होता है? धर्म जायगा जो!

"मैंने बहुत विचार कर देखा है, दो बार व्याह करनेसे ही धर्म नहीं जाता।

ब्याहके साथ धर्मका कोई सम्बन्ध नहीं, बल्कि अपनी बच्चीकी इस तरह हत्या करनेमें ही धर्म-हानिकी संभावना है।"

"तो कर दो।"

परन्तु अनुपमाने जब यह बात सुनी तो गरदन हिलाकर दृढ़ताके साथ कहा—ऐसा नहीं हो सकता। तब फिर स्वयं जगद्बन्धु बाबूने अनुपमाको बुलाकर कहा—हो सकता है, बेटी !

"इससे तो मेरे इह-लोक, पर-लोक दोनों ही बिगड़ेंगे।"

"न कुछ बिगड़ा है और न बिगड़ेगा,—बल्कि ब्याह न करनेसे ही बिगड़नेकी सम्भावना है। मान लो, अगर कोई गुणवान् पति मिल गया, तो तुम दोनों ही लोकोंका काम कर सकोगी।"

"क्या अकेले नहीं कर सकती ?"

"नहीं बेटी, नहीं कर सकती। कमसे कम हिन्दू-कुलकी स्त्रियाँ नहीं कर सकतीं। धर्मकी बात तो दूर रही, एक मामूलीसे कामके लिए भी उन्हें औरोंका सहारा लेना पड़ता है,—भला, पतिके सिवा वैसी सहायता और कौन कर सकता है, बता ? और किस कुसूरसे तुझे इतनी बड़ी सजा मिलनी चाहिए ?"

अनुपमाने नीचेको निगाह किये हुए कहा—मेरे पूर्व जन्मका फल है !

कट्टर हिन्दू जगद्बन्धु बाबूके कानोंमें यह बात शूल-सी लगी। कुछ देर चुप रहकर वे बोले—अगर ऐसा ही है तो भी तेरे लिए एक अभिभावककी जरूरत है; मेरे पीछे तेरी देख-भाल कौन करेगा ?

"भइया करेंगे।"

"भगवान् ऐसा न करें, पर उसने अगर नहीं की ? वह तो तेरी अपनी माँके पेटका भाई नहीं है और जहाँतक समझता हूँ, उसका मन भी अच्छा नहीं।" अनुपमाने मन ही मन कहा—तब जहर खा लूँगी। पिता कहने लगे,—और भी एक बात है अनू, पिता होनेपर भी बात मुझे कह देनी चाहिए,—यह कोई नहीं कह सकता कि मनुष्यका मन हर हमेशा एक-सा ही रहेगा, खासकर यौवन-कालमें प्रवृत्तियोंको हमेशा वशमें रखना मुनि-ऋषियोंके लिए भी कठिन हो जाता है। कुछ देर चुप रहकर अनुपमाने कहा—जात जो चली जायगी !

"नहीं बेटी, जात नहीं जायगी,—मेरे दिन खतम हो चले हैं और अब आँखें भी खुल गई हैं।"

अनुपमाने सिर हिलाया। मन ही मन कहा—तब जात जा रही थी, और अब नहीं जायगी? जिस समय आँख-कान बन्द करके तुम लोगोंने मेरी बलि चढ़ाई थी, उस समय ये सब बातें क्यों नहीं सोचीं? आज मेरी भी आँखें खुल गई हैं—मैं भी अच्छी तरह बदला लूँगी।

किसी भी तरह जब उसे न डिगा सके तब जगद्बन्धु बाबू बोले—तो ठीक है बिटिया, जैसा तुम अच्छा समझो, वैसा करो, तुम्हारी इच्छाके विरुद्ध मैं तुम्हारा ब्याह नहीं करना चाहता। इतना मैं अवश्य कर जाऊँगा, जिससे तुम्हें आगे कभी खाने-पहरनेकी तकलीफ न हो। उसके बाद धर्ममें चित्त लगाकर जिससे तुम सुखी हो सको, वही करना।

५—चन्द्रनाथ बाबूकी गृहस्थी

तीन साल बाद जेलसे छूटकर ललितमोहन घर नहीं आया। किसीने कहा—शर्मके मारे नहीं आता; कोई कहने लगा—इस गाँवमें आकर अब वह क्या मुँह दिखायेगा।

ललितमोहन बहुत जगह घूम-फिरकर दो साल बाद अचानक एक दिन घर आ पहुँचा। उसकी माँने मारे आनन्दके उसका सिर चूमकर आशीर्वाद दिया और कहा—बेटा, अब ब्याह करके गृहस्थ बनो; जो भाग्यमें था सो तो हो चुका—अब उसके लिए सोच-फिकर मत करो। ललितने भी कुछ न कुछ करनेका निश्चय कर लिया!

पाँच वर्ष बाद लौटकर ललितने गाँवमें बहुत-कुछ परिवर्तन देखा; खासकर जगद्बन्धु बाबूके घर। अनुपमाके माँ-बाप कोई भी जीवित नहीं, चन्द्रनाथ बाबू ही अब घरके मालिक हैं। अनुपमाने सोचा कि पिताजी जो कुछ दे गये हैं, उससे किसी तीर्थ-स्थानमें जाकर रहूँगी और उन्हीं रुपयोंसे धर्म-पुण्य, व्रत-नियमादि पालन करके अन्तिम जीवन आसानीसे बिता दूँगी। परन्तु, पिताकी तेरही आदि

हो जानेके बाद वसीयतनामा देखनेपर अनुपमाको बड़ी चोट लगी। मालूम हुआ कि पिता सिर्फ पाँच सौ रुपये ही उसे दे गये हैं! वे बड़े आदमी थे; ये मामूलीसे रुपये उनके लिए रुपयोंमें शुमार ही नहीं किये जा सकते और वास्तवमें इन रुपयोंसे किसीकी भी जीवन-भर गुजर नहीं हो सकती। गाँवके लोगोंमें बहुत-कुछ काना-फूसी चली कि यह वसीयत जगद्बन्धु बाबूकी हो ही नहीं सकती, जरूर इसके अन्दर कुछ कारसाजी है। मगर इससे नतीजा? निरुपाय होकर अनुपमा चन्द्र बाबूके घर ही रहने लगी।

लोग कहते हैं, पिताकी मृत्यु न होनेतक सौतेली माँको पहचाना नहीं जा सकता; उसी तरह सौतेले भाईको भी पिताके जीते-जी पहचानना कठिन है। इतने दिन बाद अनुपमा जान सकी कि उसके भइया चन्द्रनाथ बाबू किस ढंगके आदमी हैं। जितने भी प्रकारके अधम श्रेणीके लोग देखनेमें आते हैं, चन्द्रनाथ बाबू उन सबसे निकृष्ट निकले। हृदयमें तिल-भर भी दया-माया नहीं,—आँखोंमें जरा भी लिहाज नहीं। अनुपमाकी इस निराश्रय अवस्थामें उन्होंने उसके साथ जैसा व्यवहार शुरू कर दिया है, उसे मुँहसे कहकर नहीं बतलाया जा सकता। हर बातमें, यहाँतक कि उठते-बैठते भी उसे तिरस्कृत, लांछित और अपमानित किया करते हैं। यों तो बहुत दिनोंसे अनुपमा उन्हें देखे नहीं सुहाती थी, अब तो वे उसे फूटी आँखों भी नहीं देख सकते। बड़ी बहू पहले प्यार करती थी, पर अब वह भी अनुपमाको देख नहीं सकती। जब अनुपमा बड़े आदमीकी लड़की थी, जब उसके माँ-बाप जिन्दा थे, जब उसकी एक बातपर पाँच-पाँच जने दौड़ आते थे, तब वह भी उसे प्यार करती थी। और अब, अब वह दुखिया है, विधवा है, अपना कहनेको उसके कोई नहीं, रुपये-पैसे भी नहीं, दूसरेकी रोटी बिना खाये उसकी गुजर नहीं चल सकती; उसे भला अब कौन प्यार करे? अब उसका कौन खयाल रखे? बड़ी बहूके तीन-चार बच्चे हैं; अब उन सबका भार अनुपमापर है। उन्हें खिलाना-पिलाना, नहलाना-धुलाना, पहराना-उढ़ाना, पास सुलाना,—सब अनुपमा ही करती है; फिर भी जरा-सी कुछ त्रुटि हो गई कि बड़ी बहू नाराज होकर झटसे दो-चार उलटी-सीधी सुना देती है। इसके सिवा अनुपमाको हर रोज दोनों वक्त चन्द्र बाबूके लिए दो-चार अच्छी तरकारियाँ बनानी पड़ती हैं, क्योंकि रसोइया ठीक नहीं बना सकता और, नहीं तो चन्द्र

बाबूका उस दिन खाना ही नहीं होता। एकादशी हो चाहे द्वादशी, चाहे उपवास हो, इतना तो उसे बनाना ही पड़ेगा। विधवा होनेके बादसे अनुपमाने प्रातःकाल ही उठकर नहा-धोकर बहुत देरतक पूजा करनेका नियम-सा कर लिया था; पर अब उसे उतना भी समय नहीं दिया जाता। जरा-सी देर होते ही बड़ी बहू रानी कहने लगती हैं—जरा जल्दी हाथ चलाओ, बच्चे रो रहे हैं,—अभीतक कुछ खानेको नहीं मिला। अनुपमा जैसे-तैसे निबटा-निबटूकर उठ बैठती है; जबानसे एक शब्द भी नहीं कह सकती। एकादशीका लम्बा उपवास करके भी उसे रात-को रसोई बनानी पड़ती है, प्यासके मारे छाती फटती रहती है, आगकी गरमीमें झुलसती रहती है, शरीर अवश होने लगता है, फिर भी मुँहसे उफतक नहीं करती। अवस्था बदलनेपर सहनेकी भी ताकत बढ़ जाती है, क्योंकि जगदीश्वर यह सिखा देते हैं,—नहीं तो अनुपमा अबतक कबकी मर गई होती।

इस गृहस्थीमें उससे तो दास-दासियाँ अच्छी हैं। उनसे जब कोई कड़ी बात कह देता है तब वे उसका जवाब तो दे सकती हैं। 'हमारी तनखा चुका दीजिए, हम घर चली जायँ' इतना तो कह कहती हैं। मगर अनुपमा इतना भी नहीं कह सकती; वह बिना मूल्यकी क्रीत-दासी है; उसे मारो, काटो, चाहे जो कर डालो, फिर भी उसे यहीं रहना पड़ेगा। और वह जा ही कहाँ सकती है? एक तो विधवा और फिर बड़े आदमीकी लड़की! अनुपमाकी हालत समझाई नहीं जा सकती, समझी जा सकती है। और दूसरोंकी मोहताज हिन्दू विधवा ही उसे समझ सकती है, और कोई तो शायद ही समझे।

आज द्वादशी है। तड़के ही उठकर नहा-धोकर अनुपमा पूजा करने बैठी। पन्द्रह मिनट भी न हो पाये थे कि इतनेमें बड़ी बहूने कमरेके बाहरसे ही जरा जोरसे कहा—ननदजी, तुम्हारी पूजा क्या आज दिन-भर भी खतम नहीं होगी? ऐसा करनेसे नहीं चल सकता, कहे देती हूँ। अनुपमा शिवजीपर जल चढ़ा रही थी, बोली नहीं। बड़ी बहू दस मिनट बाद फिर आ धमकी और बाहरसे ही चिल्लाई—इतना पुण्य थैलेमें अमायेगा नहीं ननदजी, ज्यादा पुण्य मत करो,—और बहुत ही ज्यादा पुण्य-धर्मका शौक चर्राया हो तो किसी वन-जंगलमें चली जाओ; वहाँ करना; यहाँ घर-गिरस्तीमें रहकर इतनी ज्यादती नहीं सही जा सकती। फिर भी अनुपमा कुछ नहीं बोली।

तब बड़ी बहूने पहलेसे दूने जोरसे चिल्लाकर कहा—पूछती हूँ, कोई खायेगा पीयेगा भी कि नहीं ? अनुपमाने हाथका बिल्व-पत्र रखते हुए कहा—मेरी तबीयत खराब है; आज मैं कुछ नहीं कर सकूँगी।

"नहीं कर सकोगी ? तो सब कोई उपवास करें, क्यों ?"

"क्यों, मेरे सिवा क्या और कोई आदमी नहीं हैं ? महाराजको क्या हो गया ?"

"उसे बुखार आ गया है,—और उन्हें क्या महाराजके हाथकी भाती है ?"

"नहीं भाती तो तुम्हीं बना दो।"

"मैं रसोई बनाऊँ ? दर्दके मारे सिर फटा जाता है, एक हकीम चौबीसों घंटे मेरे पीछे लगा रहता है,—मैं आँचके सामने बैठकर तपूँ ?"

अनुपमा जल उठी, बोली—तो फिर सबसे उपास करनेके लिए कह दो।

"अच्छी बात है, जाती हूँ, तुम्हारे भइयासे जाकर कह देती हूँ। और तुम्हें बीमारी किधरसे हो गई ? अभी तो नहा-धोकर बैठी हो और अभी निगलोगी भी, बड़े भाईको जरा-सा बनाकर खिला भी नहीं सकती ?"

"नहीं, नहीं होता मुझसे। बड़ी बहू, मैं तुम लोगोंको खरीदी हुई बाँदी नहीं हूँ कि जो मुँहमें आया कह दिया। मैं ये सब बातें भइयासे कहूँगी।"

बड़ी बहूने मुँह बिचकाकर कहा—कह न दो जाकर, तुम्हारे भइया मेरा सिर उतरवा लेंगे !

अनुपमा कुछ देरतक स्तब्ध हो रही, बोली,—सो मैं जानती हूँ। भइया अगर अच्छे होते, तो तुम्हारा इतना साहस न बढ़ जाता।

"क्यों, उन्होंने क्या किया है ? खानेको देते हैं, पहरनेको देते हैं और क्या करें ? सचमुच ही तो वे मुझे निकालकर तुम्हें सरपर नहीं रख सकते !—तब इसके लिए व्यर्थ गुस्सा करनेसे क्या लाभ ?"

सभी चीजोंकी सीमा होती है। अनुपमाकी सहिष्णुताकी भी सीमा है। इतने दिनोंतक उसने जो बात नहीं कही, आज उसके मुँहसे वही बात निकल गई। बोली—भइया मुझे क्या खिलायेंगे-पहरायेंगे,—बापके जिन रुपयोंसे वे खाते-पहरते हैं; उन्हींके रुपयोंसे मैं खाती-पहरती हूँ।

बड़ी बहूने क्रोधित होकर कहा—अगर यही बात होती तो बाप तुम्हें रास्ते-

का कंगाल बनाकर न छोड़ जाते।

"रास्तेका कंगाल वे नहीं बना गये, तुम्हीं लोगोंने बना दिया है। गाँवभरके सभी लोग जानते हैं कि वे मुझे निराश्रय या सम्बलहीन नहीं छोड़ गये हैं। उन रुपयोंको भइया अगर न हड़प लेते, तो मुझे तुम्हारी यह भर्त्सना न सहनी पड़ती।"

सुनते ही पहले तो बड़ी बहूका चेहरा उतर गया, परन्तु दूसरे ही क्षण वह दूने तेजसे जल उठी; बोली—गाँवभरके सभी जानते हैं,—वे चोर हैं? तो यह बात उनसे कह दूँ?

"कह दो, और यह भी कह दो कि इस पापका फल उन्हें भुगतना ही पड़ेगा।"

वह दिन इसी तरह बीत गया। हालाँ कि यह बात चन्द्रनाथ बाबूने सुन ली; पर उन्होंने कोई प्रतिवाद नहीं किया।

चन्द्रनाथ बाबूके घर भोला नामका एक छोकरा-सा नौकर था। पाँच-छै दिन बाद चन्द्र बाबूने उसे भीतर घरमें बुलाकर खूब मारना शुरू कर दिया। उसका रोना-चिल्लाना सुनकर और नौकर-नौकरानियाँ भी दौड़ी आईं,—तब-तक उसी तरह मार जारी थी। अनुपमा अपने कमरेमें बैठी पूजा कर रही थी, पूजा छोड़कर वह भी दौड़ी आई। उस समय भोलाके नाक-मुँहसे खून बह रहा था। अनुपमा चिल्ला उठी—भइया, यह कर क्या रहे हो—मर जायगा जो?

चन्द्र बाबू चिल्ला उठे—आज कमबख्तको एकदम मार ही डालूँगा। साथ-साथ तुझे भी मार डालता, मगर औरत होनेसे तुझे छोड़ देता हूँ। अपने घरमें मैं इतना पाप बर्दाश्त नहीं कर सकता। बाबूजी तुझे पाँच सौ रुपये दे गये हैं,—उन्हें लेकर तू आज ही मेरे घरसे निकल जा।

अनुपमा कुछ भी न समझ सकी। उसने सिर्फ इतना कहा—क्यों?

"कुछ नहीं। आज ही रुपये ले ले, लेकर भोलाके साथ निकल जा यहाँसे। बाहर जाकर जो मनमें आवे सो करना।"

अनुपमा वहीं मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। नौकर-नौकरानियोंने सभीने यह बात सुनी; कोई मुँहपर हाथ रखकर हँसा, कोई हँसीको दबाकर भले आदमीकी तरह खिसक गया और कोई दौड़कर अनुपमाको उठाने लगा। चन्द्रनाथ बाबू मृतप्राय भोलाके मुँहपर और एक लात जमाकर बाहर चले गये।

६—आखिरी दिन

आज अनुपमाका आखिरी दिन है। इस घरमें अब वह नहीं रहेगी। जबसे उसने होश सँभाला है तबसे उसे कोई सुख नहीं मिला। बचपनमें प्रेम करना शुरू करके उसने अपनी शान्ति आप ही नष्ट की थी; 'अति' कर डाली थी, इससे विधाताने उसे रंचमात्र भी सुख नहीं दिया। अपनी कल्पनासे जिसे वह प्रेम करती थी वह उसे मिला नहीं, और जो उससे प्रेम करने आया था उसे उसने खदेड़ दिया। उसके न बाप है, न महतारी; कहीं भी खड़े होनेको स्थान नहीं। सती स्त्रियोंके लिए एकमात्र अवलम्बन है सतीत्वका सुयश, सो उसे भी ईश्वर उससे छीन लेना चाहते हैं। इसीसे वह अब इस घरमें नहीं रहना चाहती। मारे क्षोभके उसका हृदय फटा जा रहा है। निस्तब्ध निद्रित चाँदनी रातमें पिछ-वाड़ेका दरवाजा खोलकर वह फिर तालाबकी उन्हीं पुरानी सीढ़ियोंपर जाकर बैठ गई। अब अनुपमा चालाक हो गई है। पहले उसकी तैरनेकी जानकारीने उसे मरने नहीं दिया था, अबकी बार उसे व्यर्थ करनेके लिए साथमें वह कलसा लेती आई है। अबकी बार वह ढूँढ़कर निकालेगी कि तालाबमें कहाँपर डुबान पानी है और निश्चय ही डूब मरेगी। मरनेसे पहले दुनिया बड़ी सुन्दर दिखाई देती है। घर-द्वार, आकाश, मेघ, चन्द्रमा, तारे, जल, फूल, लता, पत्ते, वृक्ष, सब सुन्दर हो उठते हैं; जिधर देखो, उधर ही मनोरम मालूम होता है। मानो ये सभी चीजें उँगली उठाकर कहने लगती हैं—मरो मत, देखो, हम कितने सुखसे हैं! तुम भी सहती रहो, किसी न किसी दिन सुखी होओगी ही। न हो, तो हमारे पास आओ, हम तुम्हें सुखी करेंगी; व्यर्थमें विधाताकी दी हुई आत्माको नरकमें मत पटको। यही कारण है कि मरनेके लिए तैयार होकर भी मनुष्य फिर लौट पड़ता है। किन्तु जब लौटकर देखता है कि दुनियामें उसके लिए रंच-मात्र भी सुख नहीं, असीम संसारमें खड़े होनेके लिए तिल-भर भी स्थान नहीं, अपना कहनेको कोई नहीं, तब वह फिर मरना चाहता है; पर दूसरे ही क्षण न जाने कौन भीतरसे कह उठता है—राम राम! लौट जाओ,—ऐसा काम मत करो। मर जानेसे ही क्या सब दुःखोंकी समाप्ति हो जायगी? कैसे तुमने समझ लिया कि इससे भी बढ़कर भयंकर दुःखमें न जा पड़ोगे?

बस, मनुष्य संकुचित होकर पीछे हटकर खड़ा हो जाता है। अनुपमाको क्या ये सब बातें याद न आती थीं? परन्तु फिर भी अनुपमा मरेगी ही, किसी भी तरह अब नहीं बचेगी।

पिताकी बातें याद आईं, माँका खयाल आया, साथ ही साथ एक और आदमीका खयाल आया। जिसका खयाल आया वह है ललित। जो-जो उसे प्यार करते थे वे सभी एक-एक करके चलते बने हैं, सिर्फ एक ही आदमी उनमेंसे जीवित है। उसने उसे प्रेम किया था, प्रेम पानेके लिए वह आया था, हृदयकी देवी समझकर पूजा करने आया था, पर अनुपमाने उसकी वह पूजा स्वीकार नहीं की; बल्कि उसे अपमानित करके खदेड़ दिया। इतना ही नहीं, उसने उसे जेलतक भिजवाया। ललितने वहाँ कितनी तकलीफें पाईं, कोई ठीक है! शायद वहाँ उसने अनुपमाको कोसा होगा, शाप दिया होगा। वह सोचने लगी—अवश्य ही उसी पापसे मुझे इतना गहरा कष्ट मिला है, इतनी वेदना हो रही है। वह जेलसे लौट आया है। अब वह अच्छा हो गया है, शराब पीना छोड़कर देशोपकारमें लगकर फिर यश कमा रहा है। वह क्या अब भी मुझे याद करता होगा? हो सकता है कि नहीं करता हो, या करता भी हो। मगर उससे क्या, मेरे नामपर कलंक जो लग रहा है! उसने क्या उसे नहीं सुना होगा? जब गाँव-भरमें यह बात फैल जायगी कि कलंकिनी होकर तालाबमें डूब मरी हूँ, कल जब मेरी देह पानीपर तैरने लगेगी—ओः राम! कितनी घृणासे वह मुँह सिकोड़ लेगा!

अनुपमाने आँचलसे गलेमें कलसा बाँध लिया। इतनेमें न जाने किसने पीछेसे पुकारा—अनुपमा!

अनुपमा चौंक उठी, पीछे मुड़कर देखा कि लम्बे कदका पुरुष स्थिर होकर खड़ा है। आगन्तुकने फिर पुकारा—अनुपमा!

अनुपमाको मालूम हुआ कि यह स्वर उसने पहले भी कहीं सुना है, पर उसे याद नहीं आ रहा है। वह चुप हो रही।

"अनुपमा, आत्म-हत्या मत करो।"

अनुपमा कभी किसी दिन भी लज्जावती लता नहीं थी; उसने हिम्मतके साथ कहा—मैं आत्महत्या करूँगी, यह आपने कैसे जाना?

"तो फिर गलेमें यह कलसा क्यों बाँधा है?"

अनुपमा मौन रही। आगन्तुकने जरा मुस्कराहटके साथ कहा—आत्मघाती होनेसे क्या होता है जानती हो ?"

"क्या ?"

"अनन्त नरक !

अनुपमा काँप उठी। उसने धीरेसे कलसा खोलकर रख दिया और कहा—इस दुनियामें मेरे लिए कहीं जगह नहीं है।

"भूल गईं ? मैं याद दिलाये देता हूँ। लगभग छह साल पहले ठीक इसी जगह एक अभागेने तुम्हें जीवनभरके लिए स्थान देना चाहा था,—याद है ?"

लज्जासे अनुपमाका चेहरा सुर्ख हो गया, बोली—हाँ है।

"तो यह संकल्प छोड़ दो।"

"मेरे नामपर कलंक लगाया जा रहा है, जीना नहीं चाहती।"

"मरनेसे क्या कलंक धुल जायगा ?"

"धुल जाय या न धुल जाय, मैं तो उसे सुनने नहीं आऊँगी।"

गलत समझा है तुमने अनुपमा, मरनेसे वह कलंक हमेशा छायाकी तरह तुम्हारे नामके साथ घूमता रहेगा। जीकर देखो, यह झूठा कलंक कभी चिरस्थायी नहीं होगा।"

"लेकिन कहाँ जाकर जिन्दा रहूँ ?"

"मेरे साथ चलो।"

अनुपमाने एक बार सोचा कि यही करना चाहिए। इनके पैरों पड़कर कहूँगी—मुझे क्षमा करो। कहूँगी, तुम्हारे पास बहुत रुपया है, मुझे कुछ भीखमें दे दो,—मैं दूर कहीं जाकर छिपी रहूँगी, इसके बाद बहुत देरतक चुप रहकर सोच-विचारकर बोली—मैं नहीं जाऊँगी।

बात खतम भी न हो पाई कि अनुपमा पानीमें कूद पड़ी।

अनुपमाको जब होश आया तो उसने देखा—एक सुसज्जित कमरेमें वह पलंगपर लेटी हुई है और पास ही ललितमोहन बैठा है। अनुपमाने आँखें उन्मीलित करके कातर स्वरमें कहा—मुझे क्यों बचा लिया ?

समाप्त